

मुख्य बिंदु

मामलों का स्रोत: यह निर्णय पाँच याचिकाओं पर आधारित है, जिनमें स्वतः संज्ञान रिट याचिकाएं, विशेष अनुमति याचिकाएं, और दीवानी अपीलें सम्मिलित हैं, जो दृष्टिबाधित और अन्य दिव्यांग अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा भर्ती में भेदभाव से मुक्त समान अवसर देने की मांग करती हैं।

- मुख्य संवैधानिक मुद्दा: क्या दृष्टिबाधित अथवा अन्य दिव्यांग उम्मीदवारों को न्यायिक सेवा में नियुक्ति से बाहर करने वाले प्रावधान संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का उल्लंघन करते हैं?
- RPwD अधिनियम, 2016 की भूमिका: निर्णय में विस्तारपूर्वक व्याख्या की गई कि कैसे RPwD अधिनियम की धाराएं (विशेषकर धारा 3, 20, 34) दिव्यांग व्यक्तियों को समान अवसर और भेदभाव रहित सार्वजनिक रोजगार की गारंटी देती हैं।
- ‘Reasonable Accommodation’ की मान्यता: न्यायालय ने “उचित समायोजन” के सिद्धांत को लागू करने पर जोर दिया — कि दृष्टिबाधित व्यक्ति टेक्नोलॉजी और सहायक साधनों की मदद से प्रभावी न्यायिक दायित्व निभा सकते हैं।
- ‘Social Model of Disability’ की पुष्टि: निर्णय ने यह स्पष्ट किया कि विकलांगता का मूल्यांकन सामाजिक बाधाओं के दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए, न कि केवल शारीरिक/चिकित्सकीय दुर्बलताओं के आधार पर।
- मध्यप्रदेश और राजस्थान न्यायिक सेवा नियमों की वैधता पर सवाल: न्यायालय ने उन प्रावधानों की समीक्षा की जिनके तहत दृष्टिबाधित और कम दृष्टि वाले अभ्यर्थियों को नियुक्ति से बाहर किया गया था और उन्हें अनुचित पाया।
- पिछले निर्णयों और अंतरराष्ट्रीय दस्तावेजों का संदर्भ: Vikash Kumar v. UPSC, Union of India v. National Federation of the Blind, UNCRPD, Vienna Convention on Law of Treaties आदि के आधार पर निष्कर्ष निकाले गए।
- प्रतिनिधि दृष्टिबाधित न्यायिक अधिकारियों के उदाहरण: न्यायालय ने टी. चक्करवर्ती, ब्रह्मानंद शर्मा, हेलेन केलर जैसे उदाहरणों का उल्लेख किया, जो यह प्रमाणित करते हैं कि दृष्टिबाधित व्यक्ति भी न्यायिक कार्य सफलता से कर सकते हैं।

- अन्य उच्च न्यायालयों की स्थिति: देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा PwD को आरक्षण देने की स्थिति का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया।
- न्यायपालिका की जिम्मेदारी: न्यायालय ने कहा कि PwD को अवसर देना केवल संवैधानिक दायित्व नहीं, बल्कि न्यायपालिका की नैतिक जिम्मेदारी भी है — जिससे “Nothing About Us Without Us” के आदर्श को साकार किया जा सके।

भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

दीवानी मूल अधिकारिता

स्वतः संज्ञान रिट याचिका (दीवानी) संख्या 2 / 2024

विषय: न्यायिक सेवा में दृष्टिबाधित व्यक्तियों की भर्ती

साथ में

स्वतः संज्ञान रिट याचिका (दीवानी) संख्या 6 / 2024

विषय: राजस्थान न्यायिक सेवा में दिव्यांग अभ्यर्थियों की भर्ती

साथ में

दीवानी अपील संख्या 3496 / 2025

(विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 7683 / 2024 से उत्पन्न)

आलोक सिंह

अपीलकर्ता

बनाम

मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य

प्रतिवादीगण

साथ में

दीवानी अपील संख्या 3497 / 2025

(विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 12179 / 2024 से उत्पन्न)

आयुष यार्डी

अपीलकर्ता (गण)

बनाम

मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य

प्रतिवादी (गण)

साथ में

रिट याचिका (दीवानी) संख्या 484 / 2024

मानवेन्द्र सिंह राठौर एवं अन्य

याचिकाकर्ता (गण)

बनाम

राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य

प्रतिवादी (गण)

साथ में

रिट याचिका (दीवानी) संख्या 494 / 2024

अलीशा खान.

याचिकाकर्ता(गण)

बनाम

राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य

प्रतिवादी(गण)

निर्णय

न्यायमूर्ति आर. महादेवन

अनुमति प्रदान की जाती है। इस निर्णय को बेहतर संदर्भ और समझ हेतु निम्नलिखित शीर्षकों में विभाजित किया गया है:

क्रमांक	शीर्षक	पैरा संख्या
I.	प्रस्तावना	पैरा 02 – 03
II.	याचिकाओं में मांगी गई राहत	पैरा 04 – 8.1
III.	याचिकाओं की संक्षिप्त प्रस्तुति एवं वरिष्ठ अधिवक्ताओं के तर्क	पैरा 09 – 28
A.	स्वतः संज्ञान रिट याचिका (नागरिक) संख्या 2 / 2024 संदर्भ: न्यायिक सेवाओं में दृष्टिबाधितों की भर्ती बनाम रजिस्ट्रार जनरल, मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय एवं अन्य	पैरा 09 – 12.5
A.1	डॉ. संजय जैन – हस्तक्षेपकर्ता के तर्क	पैरा 13 – 13.11
B.	स्वतः संज्ञान रिट याचिका (नागरिक) संख्या 6 / 2024 संदर्भ: राजस्थान न्यायिक सेवा में दिव्यांग उम्मीदवारों की भर्ती बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य	पैरा 14 – 16
C.	आयुष यादों बनाम मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य [एस एल पी(दीवानी) संख्या 12179 / 2024]	पैरा 17 – 21

D.	आलोक सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य [एस एल पी (दीवानी) संख्या 7683 / 2024]	पैरा 22 – 24.2
E.	मानवेन्द्र सिंह राठौर एवं अन्य तथा अलीशा खान बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य [रिट याचिका संख्या 484 एवं 494 / 2024]	पैरा 25 – 28
IV.	विचारार्थ प्रमुख मुद्दे	पैरा 29 – 29.1
V.	विचार एवं विश्लेषण	पैरा 30 – 66
A.	मौजूदा संवैधानिक ढांचा एवं विकलांगता आधारित भेदभाव के विरुद्ध अधिकार को मौलिक अधिकार के रूप में उन्नत करने की आवश्यकता	पैरा 33 – 36
B.	अंतरराष्ट्रीय विकलांगता न्यायशास्त्र, दस्तावेज़ एवं प्रतिबद्धताएं	पैरा 37 – 38
C.	आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम – प्रावधान एवं गारंटी	पैरा 39
D.	न्यायिक दृष्टिकोण – अब तक हुई प्रगति	पैरा 40
E.	अधिकार आधारित दृष्टिकोण	पैरा 41 – 42
F.	परोक्ष भेदभाव	पैरा 43 – 46
G.	चयन मानदंड में छूट एवं दिव्यांग उम्मीदवारों हेतु अलग कट-ऑफ – क्या	पैरा 47 – 62

	अनुमेय है?	
H.	उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करने के लिए	पैरा 65 – 66
VI.	निष्कर्ष	पैरा 67 – 67.1
VII.	परिणाम	पैरा 68 – 69

I. प्रस्तावना/भूमिका

2. 4 जनवरी 2019 को संयुक्त राष्ट्र द्वारा 'विश्व ब्रेल दिवस' के रूप में चयनित किया गया, जिससे लुई ब्रेल के जन्मदिन को स्मरण किया जा सके और उन्हें उस व्यक्ति के रूप में याद किया जा सके, जिन्होंने वर्ष 1829 में 'ब्रेल प्रणाली' का आविष्कार किया, जिसे दृष्टिबाधित व्यक्ति आज भी पढ़ने और लिखने के लिए उपयोग करते हैं। लुई ब्रेल, जो पाँच वर्ष की आयु में दोनों आंखों से पूर्णतः अंधे हो गए थे, ने यह प्रणाली 20 वर्ष की आयु में स्वयं विकसित की, जो कि फ्रांसीसी सेना के कैप्टन चार्ल्स बार्बियर द्वारा निर्मित संचार प्रणाली से प्रेरित थी। उन्हें पेरिस के नेशनल इंस्टिट्यूट फॉर ब्लाइंड यूथ में प्रोफेसरशिप की पेशकश की गई, जहाँ उन्होंने इतिहास, ज्यामिति और बीजगणित पढ़ाया और संगीत में भी रुचि रखी। आज से लगभग दो शताब्दी पूर्व, लुई ब्रेल यह समझ गए थे कि दृष्टिबाधित व्यक्तियों को दया या सहानुभूति की नहीं, बल्कि समायोजन और एक सक्षम वातावरण की आवश्यकता है, जहाँ संचार एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। उनके अपने शब्दों में —“संचार तक पहुँच, सबसे व्यापक अर्थ में, ज्ञान तक पहुँच है, और यह हमारे लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है यदि हम (नेत्रहीन) अपमानित या दृष्टिवान लोगों की दयालु दृष्टि से देखे जाने से बचना चाहते हैं। हमें दया की आवश्यकता नहीं है, न ही हमें यह याद दिलाया जाना चाहिए कि हम कमजोर हैं। हमें समान समझा जाना चाहिए और यह समानता संचार के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है।” उनके शब्द विकलांग व्यक्तियों (संक्षेप में “पी डब्ल्यू डी”) की समान अवसरों की प्रबल और मार्मिक

अपील की याद दिलाते हैं, जिससे उन्हें अपने सक्षम समकक्षों के समान सभी क्षेत्रों में गरिमा और प्रगति से परिपूर्ण जीवन जीने में सक्षम बनाया जा सके।

3. "हमारा संविधान रंगहीन है और नागरिकों के मध्य किसी भी वर्ग को न तो जानता है और न ही सहन करता है। नागरिक अधिकारों के संबंध में सभी नागरिक कानून के समक्ष समान हैं।" न्यायमूर्ति जॉन मार्शल हार्लन द्वारा प्लेसी बनाम फर्ग्यूसन (1896) में दिया गया यह दूरदर्शी असहमति मत आज जिस मुद्दे पर हमें निर्णय करना है, उसकी भावना को पूर्णतः व्यक्त करता है। यदि समानता की दृष्टि से तुलना की जाए, तो भारतीय संविधान भी सक्षम और दिव्यांग नागरिकों के मध्य कोई भेद नहीं करता जब बात सभी क्षेत्रों में, विशेष रूप से रोजगार में, समान अवसर देने की आती है, और यह समानता एवं भेदभाव रहित व्यवस्था की परिकल्पना करता है। यह सिद्धांत संवैधानिक न्यायालयों द्वारा अधिकार आधारित दृष्टिकोण को अपनाकर, सक्षम वातावरण और परिस्थितियाँ प्रदान कर, तथा पी डब्ल्यू डी (दिव्यांग) को समान अवसर एवं आवश्यक समायोजन देकर लागू किया जाना चाहिए ताकि वे गरिमापूर्ण जीवन जी सकें और बिना किसी भेदभाव के अपनी पूर्ण क्षमता को प्राप्त कर सकें। समानता और भेदभाव रहितता की इस अवधारणा को इस न्यायिक विमर्श की मूल आधारशिला मानते हुए, हम आगे बढ़ते हैं और इन मामलों से उत्पन्न मुद्दों पर विचार करते हैं।

II. याचिकाओं में मांगी गई राहत

स्वतः संज्ञान रिट याचिका (दीवानी) संख्या 2 / 2024

4. दिनांक 07.03.2024 को, इस न्यायालय ने एक पत्र याचिका, जो दिनांक 15.01.2024 को भारत के माननीय प्रधान न्यायाधीश को एक दृष्टिबाधित अभ्यर्थी की माता द्वारा संबोधित की गई थी, पर स्वतः संज्ञान लिया। इस याचिका में मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 (23.06.2023 को संशोधित), की वैधता को चुनौती दी गई है, जिसमें नियम 6 ए के माध्यम से दृष्टिबाधित

एवं कम दृष्टि वाले अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा में नियुक्ति से बाहर कर दिया गया है। पत्र याचिकाकर्ता के अनुसार, मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की यह कार्रवाई मनमानी, भेदभावपूर्ण, अन्यायपूर्ण है एवं संविधान की भावना का उल्लंघन है। अतः उन्होंने इस न्यायालय से प्रार्थना की है कि वह इस विषय की जांच करे और दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के हितों की रक्षा करते हुए, उन्हें समान अवसर एवं गरिमामयी जीवन जीने के अधिकार को सुनिश्चित करे, जैसा कि 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016' (संक्षेप में "आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016") में प्रत्याभूत है।

1. मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 में संशोधन किया गया, जिसके फलस्वरूप नियम 6A के अंतर्गत दृष्टिबाधित एवं कम दृष्टि वाले अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा में नियुक्ति से बाहर कर दिया गया।

2. उक्त पत्र याचिका को संविधान के अनुच्छेद 32 के अंतर्गत एक याचिका में परिवर्तित कर दिया गया।

3. हम निम्नलिखित पक्षकारों को नोटिस जारी करने का निर्देश देते हैं, जो दो सप्ताह में प्रत्युत्तर दायर करें:

(i) मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल;

(ii) मध्यप्रदेश राज्य; तथा

(iii) भारत संघ।

4. श्री गौरव अग्रवाल, वरिष्ठ अधिवक्ता को इस मामले में न्यायालय की सहायता हेतु न्यायमित्र नियुक्त किया गया। उनके अनुरोध पर श्री रवि रघुनाथ, अधिवक्ता को उनके साथ सहायता हेतु रिकॉर्ड पर अधिवक्ता नामित किया गया।

5. याचिका को 1 अप्रैल 2024 को सूचीबद्ध किया जाए।

संक्षेप में "RPwD अधिनियम, 2016"

स्वतः संज्ञान रिट याचिका (दीवानी संख्या 6 / 2024

5. यह मामला एक दृष्टिबाधित विधि छात्र द्वारा भारत के माननीय प्रधान न्यायाधीश को भेजी गई पत्र याचिका से उत्पन्न हुआ है, जिसमें राजस्थान की न्यायिक सेवा परीक्षाओं

में दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए पारदर्शिता, निष्पक्षता और समान अवसर सुनिश्चित करने हेतु आवश्यक कदम उठाने का अनुरोध किया गया।

विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 12179 / 2024 से उत्पन्न अपील

6. यह अपील मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा रिट याचिका संख्या 30465 / 2023 में पारित अंतिम आदेश दिनांक 01.04.2024 को चुनौती देती है, जिसमें न्यायालय ने मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 7 में संशोधन एवं उसके परिणामस्वरूप दिनांक 17.11.2023 को जारी अधिसूचना को चुनौती देने वाली याचिका को खारिज कर दिया, चूंकि ये दिव्यांग व्यक्तियों हेतु कोई विशिष्ट छूट प्रदान नहीं करते थे। याचिकाकर्ता द्वारा उक्त नियम 7 में छूट की मांग की गई थी।

विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 7683 / 2024 से उत्पन्न अपील

7. यह अपील मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर द्वारा दिनांक 11.01.2024 को रिट याचिका संख्या 11175 / 2023 में पारित आदेश को चुनौती देती है। याचिकाकर्ता द्वारा इस याचिका में (i) अधिसूचना दिनांक 18.02.2023 को, जहां अपीलकर्ता को शारीरिक रूप से विकलांग कोटे के तहत अनारक्षित वर्ग में सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ श्रेणी (प्रवेश स्तर) के पद पर चयनित नहीं किया गया, को निरस्त करने हेतु, तथा (ii) प्रतिवादी प्राधिकरणों को अपीलकर्ता को उक्त पद पर नियुक्त करने हेतु निर्देशित करने की मांग की गई थी, साथ ही सभी परिणामी लाभों सहित। उक्त आदेश में, उच्च न्यायालय ने रिट याचिका यह टिप्पणी करते हुए खारिज कर दी कि अपीलकर्ता को आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 की धारा 34 और कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15.01.2018 की धारा 11 के अंतर्गत लाभ नहीं दिया जा सकता।

रिट याचिका (दीवानी संख्या 484 और 494 / 2024

8. राजस्थान उच्च न्यायालय को एक मंडामस(परमादेश) की रिट जारी करते हुए निर्देश देने की मांग की गई है कि वह राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा के प्रत्येक चरण — प्रारंभिक, मुख्य, साक्षात्कार और अंतिम परिणाम — में 'बेंचमार्क दिव्यांगता' श्रेणी के अंतर्गत अभ्यर्थियों के लिए अलग से परिणाम और कट-ऑफ अंक प्रकाशित और घोषित करे।

रिट याचिका (दीवानी) संख्या 494 / 2024 में आई ए . संख्या 242002 / 2024

8.1 उपर्युक्त राहतों के अतिरिक्त, याचिकाकर्ता ने इस संशोधन आवेदन द्वारा निम्नलिखित प्रार्थनाएं की हैं:

(i) यह घोषणा की जाए कि राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 संविधान के अनुच्छेद 14, 16 एवं 21 का उल्लंघन करते हैं, क्योंकि वे बेंचमार्क दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए अलग मेरिट सूची और/या कट-ऑफ की व्यवस्था नहीं करते, जबकि यह एक पृथक श्रेणी है।

(ii) प्रतिवादी संख्या 1 को मंडामस(परमादेश) जारी कर निर्देशित किया जाए कि वह राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 को आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 तथा कार्मिक और प्रशिक्षण विभाग, भारत सरकार द्वारा समय-समय पर जारी कार्यालय ज्ञापनों के अनुसार संशोधित करे, ताकि दिव्यांग व्यक्तियों हेतु पृथक मेरिट सूची की व्यवस्था शामिल की जा सके।

(iii) प्रतिवादी संख्या 1 को मंडामस(परमादेश) जारी कर निर्देशित किया जाए कि वह राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा, 2024 में बेंचमार्क दिव्यांगता श्रेणी के अंतर्गत अभ्यर्थियों (जिसमें याचिकाकर्ता स्वयं भी शामिल हैं) के लिए पृथक मुख्य परीक्षा आयोजित करे।

(iv) प्रतिवादी संख्या 1 को मंडामस(परमादेश) जारी कर निर्देशित किया जाए कि वह राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा, 2024 में चयन की प्रक्रिया हेतु प्रत्येक चरण में बेंचमार्क दिव्यांगता श्रेणी के अभ्यर्थियों के लिए परिणाम पृथक रूप से घोषित करे।

याचिकाओं की संक्षिप्त प्रस्तुति एवं वरिष्ठ अधिवक्ताओं के तर्क

A. विषय: दृष्टिबाधित व्यक्तियों की न्यायिक सेवाओं में भर्ती बनाम मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार जनरल एवं अन्य[स्वतः संज्ञान रिट याचिका (नागरिक) संख्या 2 / 2024]

9. दिनांक 15.01.2024 को एक दृष्टिबाधित अभ्यर्थी की माता द्वारा भारत के माननीय प्रधान न्यायाधीश को दी गई पत्र याचिका के आधार पर, जिसमें मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A में किए गए संशोधन को चुनौती दी गई थी — जिसमें अंधे और कम दृष्टि वाले व्यक्तियों को दिए गए आरक्षण को हटा दिया गया — इस न्यायालय ने शीर्षकबद्ध स्वतः संज्ञान रिट याचिका दर्ज की।

10. इस स्वतः संज्ञान रिट याचिका में प्रतिवादीगण हैं — मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, मध्यप्रदेश सरकार तथा भारत संघ। आदेश दिनांक 15.04.2024 द्वारा, इस न्यायालय ने डॉ. संजय एस. जैन को इस प्रकरण में हस्तक्षेपकर्ता के रूप में सम्मिलित किया, जो बंगलोर स्थित नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी में विधि के प्रोफेसर हैं, 25 वर्षों से अधिक का शिक्षण अनुभव रखते हैं और जन्म से पूर्णतः दृष्टिबाधित हैं, ताकि वे जिला न्यायपालिका में दृष्टिबाधित व्यक्तियों की नियुक्ति से संबंधित मुद्दे पर न्यायालय की सहायता कर सकें।

पत्र याचिकाकर्ता की प्रस्तुतियाँ

11. पत्र याचिकाकर्ता के अनुसार, मध्यप्रदेश सरकार द्वारा RPwD अधिनियम, 2016 के अनुच्छेद 101 के तहत प्रदत्त अधिकार का प्रयोग करते हुए बनाए गए मध्यप्रदेश दिव्यांगजन अधिकार नियम, 2017 के नियम 12(1)(क) में अंधे एवं कम दृष्टि वाले व्यक्तियों के पक्ष में आरक्षण का प्रावधान है। रश्मि ठाकुर बनाम मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय एवं अन्य में दिए गए निर्णय एवं मध्यप्रदेश जिला न्यायालय स्थापना (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 2016 के आलोक में दृष्टिबाधित व्यक्तियों को आरक्षण प्रदान

किया गया था। अन्य राज्य जैसे हरियाणा, दिल्ली आदि में भी इसी श्रेणी के लिए आरक्षण दिया जाता है। इसलिए, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A में किया गया यह संशोधन संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16 और 21 का उल्लंघन करता है। यह भी उल्लेख किया गया कि वर्ष 2021 की न्यायिक सेवा रिक्तियों में मध्यप्रदेश उच्च न्यायालयने अंधे एवं कम दृष्टि वाले अभ्यर्थियों को आरक्षण प्रदान किया था, अतः वर्तमान में ऐसा आरक्षण हटाना 2023 से पहले उसी श्रेणी में चयनित व्यक्तियों एवं बाद के अभ्यर्थियों के बीच अन्यायपूर्ण भेदभाव होगा। अतः पत्र याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से निवेदन किया कि वह इस मुद्दे पर विचार करे और दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के हितों की रक्षा करे।

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की ओर से प्रस्तुतियाँ

12. प्रतिवादी पक्ष की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि विवादित नियम अर्थात् मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 का नियम 6A सिविल न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) के पद पर भर्ती में PwD अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण से संबंधित है, और इसका मूल पाठ निम्नानुसार है:

"6A. 6% पदों को क्षैतिज रूप से आरक्षित किया जाएगा, केवल प्रारंभिक भर्ती के समय, उन व्यक्तियों के लिए जो कि अंगविकृति, कोढ़मुक्त, बौनेपन, पेशीय अपघटन एवं तेजाब हमले से पीड़ित हों, मस्तिष्क पक्षाघात को छोड़ते हुए, जैसा कि 'दिव्यांगजन अधिकार अधिनियम, 2016 (2016 का अधिनियम संख्या 49)' की धारा 34 में निर्दिष्ट है।

यह भी उपबंधित है कि यदि ऐसे आरक्षित पद, या उनमें से कोई, किसी दिए गए भर्ती वर्ष में उपयुक्त अभ्यर्थियों की अनुपलब्धता के कारण भरे नहीं जा सकें, तो ऐसी रिक्तियों को अगले भर्ती वर्ष में अग्रेषित किया जाएगा और यदि कोई उपयुक्त अभ्यर्थी फिर भी उपलब्ध न हो, तो उन्हें अनारक्षित माना जाएगा।"

जब मध्यप्रदेश उच्च न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 2017 (संक्षेप में "एम पी एच जे एस नियम, 2017") बनाए जा रहे थे, तब नेताजी सुभाष चंद्र बोस मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, जबलपुर (एक स्वायत्त शासकीय मेडिकल कॉलेज) के तत्कालीन डीन से यह राय मांगी गई थी कि क्या आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016

के अंतर्गत उल्लिखित पी डब्ल्यू डी अभ्यर्थी जिला न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) के पद के लिए उपयुक्त हैं। उक्त डीन ने पत्र संख्या 6417 दिनांक 04.10.2017 के माध्यम से राय दी कि जिन व्यक्तियों को अंधता, कम दृष्टि, बहरापन, मस्तिष्क पक्षाघात, ऑटिज़्म, बौद्धिक अक्षमता, विशिष्ट अधिगम अक्षमता, मानसिक रोग या बहुविकलांगता जैसी अक्षमताएं हैं, वे उच्च न्यायिक सेवा के न्यायाधीश के कर्तव्यों का निर्वहन नहीं कर सकते। इस राय के आलोक में एम पी एच जे एस नियम, 2017 से धारा 34 में उल्लिखित (क), (ख), (ग – केवल मस्तिष्क पक्षाघात), (घ) और (ड) खंडों के अंतर्गत वर्णित विकलांगताओं वाले व्यक्तियों हेतु 2% आरक्षण हटाने का प्रस्ताव दिया गया। इसके पश्चात् यह मामला 'दिव्यांगजन आयुक्त' को आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 की धारा 34 के द्वितीय उपबंध के अनुसार भेजा गया, तथा मध्यप्रदेश राज्य सरकार के सामाजिक न्याय एवं दिव्यांगजन कल्याण विभाग द्वारा दी गई छूट के आधार पर एम पी एच जे एस नियम, 2017 को अधिसूचित कर 13.03.2018 से लागू किया गया। अतः यह धारा 34 की सभी आवश्यकताओं का पूर्ण अनुपालन है।

12.1. माननीय अधिवक्ता के अनुसार, आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 की धारा 34 के द्वितीय उपबंध में प्रयुक्त शब्दावली "सरकारी प्रतिष्ठान में किए जाने वाले कार्य के प्रकार को ध्यान में रखते हुए" है। उच्च न्यायिक सेवा (प्रवेश स्तर) के सदस्य द्वारा किया जाने वाला कार्य सिविल न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) के कार्य से समान है। इसलिए, राज्य प्राधिकरणों द्वारा मौखिक रूप से सूचित किया गया कि उच्च न्यायालय/जिला न्यायालय स्थापना के लिए अलग से छूट प्राप्त करने हेतु पृथक अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि केवल पदनाम में परिवर्तन होने से जब कार्य की प्रकृति व स्थापना समान है, तो अलग अधिसूचना की दरकार नहीं। उक्त तथ्य के आलोक में कि मध्यप्रदेश राज्य सरकार द्वारा जिला न्यायपालिका की स्थापना के लिए पूर्व में ही छूट दी जा चुकी है, और नियमों की वैधता को चुनौती नहीं दी गई है, यह पत्र याचिका स्वीकार्य नहीं है।

12.2. माननीय अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि उच्च न्यायालय ने दिनांक 23.02.2023 के अपने पत्र में मध्यप्रदेश दिव्यांगजन अधिकार नियम, 2017 के नियम 12 के आलोक में पी डब्ल्यू डी के लिए आरक्षण को 4% से बढ़ाकर 6% करने हेतु

संशोधन को स्वीकृति प्रदान की, जिसे राज्य सरकार द्वारा अनुमोदित कर 23.06.2023 को राजपत्र में प्रकाशित किया गया।

12.3. अतः अधिवक्ता के अनुसार, दृष्टिबाधित व्यक्तियों को न्यायिक सेवा भर्ती परीक्षा में भाग लेने से किसी भी प्रकार का निषेध नहीं है। हालांकि, मेडिकल विशेषज्ञ, अर्थात् नेताजी सुभाष चंद्र बोस मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, जबलपुर के डीन की राय में pआर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 की धारा 34 में वर्णित खंड (क), (ख), (ग - केवल मस्तिष्क पक्षाघात), (घ) एवं (ङ) के अंतर्गत आने वाली अक्षमताओं से पीड़ित व्यक्ति निम्नलिखित कर्तव्यों को पूरा नहीं कर सकते: पक्षकारों की याचिकाओं का अध्ययन, केस दस्तावेजों का पढ़ना, मौखिक साक्ष्य की रेकॉर्डिंग, गवाहों के आचरण का मूल्यांकन, पक्षकारों के बीच समझौता कराना, न्यायिक निर्णयों का अध्ययन, न्यायालय की कार्यवाही का संचालन, निर्णयों का उच्चारण, एवं प्रशासनिक कार्यों का निष्पादन। इसलिए यह धारणा बनी कि अंधता, कम दृष्टि, बहरापन, ऑटिज़्म, मस्तिष्क पक्षाघात, बौद्धिक अक्षमता, अधिगम अक्षमता, मानसिक रोग एवं बहुविकलांगता से पीड़ित व्यक्ति एक न्यायाधीश के अपेक्षित दायित्वों को निभाने में सक्षम नहीं होंगे। अतः उच्च न्यायालय की यह कार्रवाई राज्य सरकार द्वारा दी गई छूट के अनुरूप है और आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 की धारा 34(1) के द्वितीय उपबंध के अंतर्गत की गई है; तथा नियम 6A में संशोधन का उद्देश्य युक्तिसंगत है एवं किसी प्रकार से भेदभावपूर्ण या मनमाना नहीं है।

12.4. विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.03.2024 को पारित अंतरिम आदेश के अनुपालन में, सभी दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों, जिन्होंने अपनी-अपनी श्रेणियों में न्यूनतम अर्हक अंक प्राप्त किए थे, को मुख्य परीक्षा (दिनांक 30.03.2024 एवं 31.03.2024) में भाग लेने की अनुमति दी गई। उक्त के अतिरिक्त, इस न्यायालय ने दिनांक 07.11.2024 को एस एम डब्ल्यू (दीवानी) संख्या 2 / 2024 में आदेश पारित करते हुए देशभर के उच्च न्यायालयों हेतु पी डब्ल्यू डी अभ्यर्थियों की जिला न्यायपालिका में चयन हेतु दिशानिर्देश जारी किए। इसके अनुपालन में, एम पी जे एस नियम, 1994 को यथोचित संशोधित करने हेतु नियम निर्माण समिति के समक्ष प्रस्ताव रखा गया।

12.5. उक्त के आधार पर, विद्वान् अधिवक्ता ने निवेदन किया कि यह न्यायालय प्रतिवादीगण को निर्देशित कर सकता है कि दृष्टिबाधित अथवा कम दृष्टि वाले व्यक्तियों को आर पी डब्ल्यू डी अधिनियम, 2016 के लाभ प्राप्त करने की अनुमति दी जाए, बशर्ते कि चिकित्सा परीक्षण से यह प्रमाणित हो जाए कि उनकी स्थिति निकट भविष्य में (सामान्यतः नियुक्ति की तिथि से 25 से 30 वर्षों के भीतर) अंधता या गंभीर दृष्टिहीनता में परिवर्तित नहीं होगी, जिससे वे अपनी संपूर्ण सेवा अवधि के दौरान कार्य करने में सक्षम रहें।

A.1 डॉ. संजय जैन – हस्तक्षेपकर्ता की प्रस्तुतियाँ

13. हस्तक्षेपकर्ता के अधिवक्ता के अनुसार, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा (संशोधन) अधिनियम, 2023, दृष्टिबाधित व्यक्तियों को न्यायिक सेवा परीक्षा में भाग लेने के अधिकार का उल्लंघन करता है। हस्तक्षेप आवेदन के साथ संलग्न विभिन्न दस्तावेजों के माध्यम से, learned counsel ने देशभर में विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पी डब्ल्यू डी अभ्यर्थियों की नियुक्ति के लिए लागू भर्ती नियमों की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि भारत के 25 उच्च न्यायालयों में से केवल कुछ ने ही पी डब्ल्यू डी हेतु आरक्षण का प्रावधान किया है, जैसे:

(क) दिल्ली उच्च न्यायालय – दिल्ली न्यायिक सेवा नियम, 1970 द्वारा शासित। नियम 22 (2019 में प्रतिस्थापित) कहता है: “प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा सेवा में की जाने वाली नियुक्तियां अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों एवं दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण एवं अन्य रियायतों (आयु में छूट को छोड़कर) के विधिक प्रावधानों / केंद्र सरकार द्वारा समय-समय पर जारी आदेशों के अधीन होंगी।”

ख) मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय के संदर्भ में, MPHJS नियम, 2017 पूर्ववर्ती नियमों के स्थान पर अधिनियमित किए गए थे। नियम 6(2) के तहत सेरेब्रल पाल्सी से पीड़ित व्यक्तियों को छोड़कर, अंगविकृति से पीड़ित व्यक्तियों के लिए 2% आरक्षण का प्रावधान है। दिल्ली और मध्यप्रदेश दोनों ही आंशिक शुल्क रियायत एवं लेखक (scribe) की सुविधा भी प्रदान करते हैं।

(ग) हिमाचल प्रदेश न्यायिक सेवा नियम, 2004 (2016 के संशोधन सहित) में अतिरिक्त जिला न्यायाधीश और सिविल जज पदों पर PwD के लिए 3% आरक्षण है।

(घ) आंध्र प्रदेश में हर 100 पदों में से 3 पद दिव्यांगजनों के लिए आरक्षित हैं। साथ ही, अंगविकृति से ग्रस्त व्यक्तियों के लिए ऊपरी आयु सीमा 45 वर्ष निर्धारित की गई है।

(ङ) तेलंगाना में भी यही प्रतिशत लागू है लेकिन केवल अंगविकृति वाले व्यक्तियों को आरक्षण प्राप्त है, और कोई आयु छूट प्रदान नहीं की जाती।

(च) ओडिशा उच्च न्यायालय केवल अंगविकृति से पीड़ित व्यक्तियों को आरक्षण देता है, वह भी केवल 1%।

(छ) छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय 2% आरक्षण देता है, लेकिन साथ में यह भी शर्त है कि उम्मीदवार "अच्छरित्र, स्वस्थ और मानसिक रूप से सक्षम" हो।

(ज) राजस्थान राज्य में, दृष्टिबाधित उम्मीदवारों को "राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010" के तहत आरक्षण दिया गया है। "राजस्थान दिव्यांगजन रोजगार नियम, 2000" के नियम 36 के अनुसार कुल 3% आरक्षण में से 1% दृष्टिबाधिता, श्रवण बाधिता या अंगविकृति के लिए आरक्षित है।

(झ) मद्रास उच्च न्यायालय ने तमिलनाडु राज्य न्यायिक सेवा (कैंडर और भर्ती) नियम, 2007 के तहत, पीडब्ल्यूडी PwD अधिनियम 1995 का पालन करते हुए, नेत्रहीन, बधिर और अस्थि विकलांग उम्मीदवारों के लिए प्रत्येक श्रेणी में 1% आरक्षण अलग से प्रदान किया है। नियुक्तियाँ बारी-बारी से और अनुसूची III-ए में निर्दिष्ट रोटेशन के क्रम में की जाती हैं। भर्ती नियमों में आगे यह भी प्रावधान है कि यदि किसी विशेष विकलांगता श्रेणी में कोई योग्य और उपयुक्त उम्मीदवार उपलब्ध नहीं है, तो रिक्ति को अन्य विकलांगता श्रेणियों के उम्मीदवारों द्वारा भरा जा सकता है। तमिलनाडु सरकार ने 01.07.2023 को तमिलनाडु राज्य न्यायिक सेवा में जिला न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) के पद पर सीधी भर्ती के लिए आवेदन करने वाले उम्मीदवारों के लिए निर्देशों के माध्यम से पीडब्ल्यूडी के लिए एक व्यापक आरक्षण नीति निर्धारित की है। उच्च न्यायालय परीक्षा के लिए पूर्ण शुल्क माफी भी प्रदान करता है, हालांकि, अधिसूचना में स्क्राइब सुविधा के प्रावधान पर चुप्पी साधी गई है। यह स्पष्ट रूप से पीडब्ल्यूडी को ऊपरी आयु में छूट देने से इनकार करता है। जिला न्यायाधीश के पद को पीडब्ल्यूडी के लिए पहचान किए गए

पदों में से एक के रूप में मान्यता देते हुए भी, भर्ती अधिसूचना विकलांगता की एक आरोपित अवधारणा को अपनाती है। जिला न्यायाधीश (प्रवेश स्तर) का पद नियमों के अनुसार श्रवण बाधित / एक हाथ / एक पैर / दोनों पैर / कुछ रोग से ठीक हुए / बौनापन / एसिड हमले के शिकार (स्क्राइब की सहायता के बिना और सहायक उपकरण के साथ) श्रेणियों के दिव्यांग व्यक्तियों के लिए उपयुक्त के रूप में पहचाना गया है। तमिलनाडु राज्य न्यायिक सेवा (कैंडर और भर्ती) नियम, 2007 के नियम 10 के अनुसार, जैसा कि जी.ओ.(एमएस) संख्या 234, गृह (न्यायालय-I) विभाग, दिनांक 03.04.2018 द्वारा संशोधित किया गया है, केवल वे उम्मीदवार पात्र हैं जो निम्नलिखित शारीरिक गतिविधियां करने में सक्षम हैं:

(क) बैठकर किया गया कार्य – S

(ख) खड़े होकर किया गया कार्य – ST

(ग) चलकर किया गया कार्य – W

(घ) देखकर किया गया कार्य – SE

(ङ) सुनकर किया गया कार्य – H

(च) पढ़ने और लिखने का कार्य – RW

(छ) संवाद करना (मौखिक या गैर-मौखिक संचार सहित)

(ण) 11 उच्च न्यायालय जैसे जम्मू-कश्मीर, कलकत्ता, झारखंड, सिक्किम, उत्तराखंड, मणिपुर, मेघालय, इलाहाबाद, कर्नाटक, बॉम्बे और त्रिपुरा – PwD (पीडब्ल्यूडी) उम्मीदवारों के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति में कोई आरक्षण या रियायत प्रदान नहीं करते हैं।

13.1 विद्वान् अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि पूर्ववर्ती "दिव्यांग व्यक्तियों (समान अवसर, अधिकारों की सुरक्षा और पूर्ण भागीदारी) अधिनियम, 1995" की धारा 32, जो अब RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 33 के समकक्ष है, राज्य को यह दायित्व देती है कि वे उन पदों की पहचान करें जिन्हें PwD के लिए आरक्षित किया जा सकता है। इस उद्देश्य हेतु 30.12.2010 को भारत सरकार के सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय

के अपर सचिव की अध्यक्षता में एक विशेषज्ञ समिति गठित की गई। इस समिति ने 2012 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की, और PwD अधिनियम की धारा 32 के अंतर्गत पहचाने गए पदों की सूची अधिसूचना दिनांक 29.07.2013 द्वारा प्रकाशित की गई। इस सूची में पदों को 4 श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, जिसमें "न्यायाधीश और मजिस्ट्रेट" को ग्रुप-A में क्रमांक 466 पर विशेष रूप से उल्लेखित किया गया है।

13.2. यह भी प्रस्तुत किया गया कि दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने दिनांक 23.08.2006 को रिट याचिका संख्या 9840 / 2006 में दृष्टिबाधित व्यक्तियों को न्यायाधीश पद के लिए शामिल करने के मुद्दे पर स्पष्ट विचार व्यक्त किया। इसके पश्चात दिल्ली न्यायिक सेवा में दृष्टिबाधित/कम दृष्टि वाले व्यक्तियों को आरक्षण का लाभ प्रदान किया गया। तत्पश्चात्, दिल्ली उच्च न्यायालय की एक अन्य खंडपीठ ने रिट याचिका संख्या 983 / 2014 (निशांत एस. दीवान बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय) में दिनांक 25.03.2014 को आदेश पारित कर दिल्ली उच्च न्यायिक सेवा में भी PwD के लिए यह लाभ विस्तारित किया।

13.3. इसके अतिरिक्त प्रस्तुत किया गया कि RPwD अधिनियम, 2016 ने 19.04.2017 से PwD अधिनियम, 1995 का स्थान लिया। इसकी धारा 3(3) विकलांगता के आधार पर भेदभाव को निषिद्ध करती है, वहीं धारा 20 सार्वजनिक रोजगार के मामलों में भेदभाव को प्रतिबंधित करती है। इस अधिनियम के अंतर्गत राज्य पर यह दायित्व है कि वह प्रत्येक पद समूह में कुल रिक्तियों का न्यूनतम 4% PwD से नियुक्त करे। इस न्यायालय ने 'जस्टिस सुनंदा भंडारे फाउंडेशन बनाम भारत संघ' (रिट याचिका संख्या .110 / 1998 में I.A. संख्या .10 / 2015, आदेश दिनांक 25.04.2017) में RPwD अधिनियम के प्रावधानों की व्याख्या करते हुए PwD के सम्मानपूर्ण जीवन के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21 में समाहित मौलिक अधिकार माना है। अतः RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 3 के प्रति राज्य की उदासीनता, मौलिक अधिकारों का गंभीर उल्लंघन है।

13.4. विद्वान् अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि आक्षेपित नियम अर्थात् मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 का नियम 6A, अंधता और कम दृष्टि वाले

व्यक्तियों एवं "गति-अक्षम व्यक्तियों (leprosy cured, dwarfism, muscular dystrophy एवं acid attack victims)" के मध्य रूढ़िबद्ध वर्गीकरण करता है, जिससे उत्तरार्द्ध को आरक्षण का लाभ मिलता है और पूर्वार्द्ध को नहीं। अनूज गर्ग बनाम होटल एसोसिएशन ऑफ इंडिया⁷ में विचाराधीन प्रावधान के समान, जिसने महिलाओं और पुरुषों के मध्य वर्गीकरण सृजित किया था और जिसे इस न्यायालय ने, यह इंगित करते हुए कि 'अभियुक्त विधान रूढ़िवादी नैतिकता और लैंगिक भूमिका की अवधारणाओं की असाध्य धारणाओं से ग्रस्त है; इस प्रकार प्राप्त परिप्रेक्ष्य सामग्री में पुराना और साधनों में परिवर्तनशील है,' असंवैधानिक घोषित किया था। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, खंड 6 ए इस रूढ़िवादी धारणा पर आधारित है कि दृष्टिहीनता को दिव्यांग व्यक्ति (PwD) द्वारा प्रतिपूरित नहीं किया जा सकता, जिसके परिणामस्वरूप उनका उत्पीड़न चिरस्थायी होता है।

13.5.

आगे यह भी प्रस्तुत किया गया कि **विचाराधीन नियम** इस बात की अज्ञानता को दर्शाता है कि उचित सहायता प्रदान किए जाने पर **दिव्यांग व्यक्ति** क्या हासिल कर सकते हैं। ऐसी अज्ञानता विचाराधीन नियम को बनाए रखने के लिए एक वैध कानूनी आधार के रूप में काम नहीं कर सकती है। इसके अतिरिक्त, भले ही यह तर्क स्वीकार कर लिया जाए कि मध्य प्रदेश न्यायपालिका में एक नेत्रहीन या कम दृष्टि वाला न्यायिक अधिकारी न्यायिक कार्यों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने में असमर्थ होगा, इसकी जिम्मेदारी **उच्च न्यायालय प्रशासन** की ही है। एक पूरे वर्ग के नागरिकों को, जिसके वे वैधानिक रूप से हकदार हैं, आरक्षण से सीधे बाहर करने के बजाय, उचित प्रतिक्रिया यह होनी चाहिए थी कि उन विशिष्ट चुनौतियों की पहचान की जाए और उन्हें संबोधित किया जाए जो उनकी पूर्ण भागीदारी में बाधा डालती हैं। ऐसा दृष्टिकोण इन बाधाओं को दूर करने या कम करने के लिए **रचनात्मक समाधानों** को प्रोत्साहित करेगा, जिससे भविष्य में अधिक **समावेशिता** का मार्ग प्रशस्त होगा। विकलांगता के **चिकित्सा मॉडल** से **सामाजिक मॉडल** की ओर बदलाव के अनुरूप, जिसे इस न्यायालय ने बार-बार मान्यता दी है, ध्यान इस बात पर नहीं होना चाहिए कि विकलांगता स्वयं कैसे बाधाएं पैदा करती है, बल्कि इस बात पर होना चाहिए कि **सामाजिक/संस्थागत बाधाएं** दिव्यांग व्यक्तियों की पूर्ण और समान भागीदारी को कैसे रोकती हैं और इन बाधाओं को प्रभावी ढंग से कैसे समाप्त किया जा सकता है।

13.6. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी कहा कि मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा वर्तमान में जो तर्क दिया जा रहा है, वही तर्क मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 'वी. सुरेंद्र मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य' [(2015) 4 MLJ 513] में स्वीकार किया गया था, जिसे इस न्यायालय ने 'वी. सुरेंद्र मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य' [(2019) 4 SCC 237] में अनुमोदित किया। हालांकि बाद में इस न्यायालय ने 'विकास कुमार बनाम UPSC एवं अन्य' [(2021) 5 SCC 370] में सुरेंद्र मोहन निर्णय को खंडित कर दिया। तमिलनाडु लोक सेवा आयोग ("TNPSC") द्वारा सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के पद पर नियुक्ति के लिए 40-50% दृश्य/श्रवण हानि की ऊपरी सीमा को पात्रता मानदंड के रूप में लगाने का मामला था; जिसमें अपीलकर्ता, जिसकी दृश्य हानि 70% थी, इस सीमा के कारण अपात्र हो गया था, और मद्रास उच्च न्यायालय ने इस सीमा को बरकरार रखा था। जब यह मामला इस न्यायालय में आया, तो दो-न्यायाधीशों की पीठ ने मद्रास उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण की पुष्टि करते हुए कहा कि एक राज्य में न्यायिक अधिकारी को मामलों की सुनवाई करने और निर्णय लिखने के लिए सुनने, देखने और बोलने की उचित क्षमता होनी चाहिए और इसलिए, **विचाराधीन सीमा** एक वैध प्रतिबंध है। हालांकि, **विकास कुमार (सुप्रा)** के बाद के निर्णय में, इस न्यायालय ने माना कि **सुरेंद्र मोहन** का अनुपात त्रुटिपूर्ण था क्योंकि उक्त निर्णय भारत के **संयुक्त राष्ट्र विकलांग व्यक्ति अधिकार अभिसमय (UNCRPD)** का पक्षकार बनने और **विकलांग व्यक्ति अधिकार अधिनियम, 2016 (RPwD Act, 2016)** को अधिनियमित करने के बाद दिया गया था, ये दोनों ही **उचित समायोजन ("RA")** के सिद्धांत को मान्यता देते हैं। इस न्यायालय ने आगे कहा कि सुरेंद्र मोहन (सुप्रा) के दृष्टिकोण में यह विचार करने में विफलता रही थी कि क्या अपीलकर्ता को उसकी विकलांगता के लिए आवश्यक उचित समायोजन प्रदान करने के बाद सिविल जज (जूनियर डिवीजन) के कर्तव्यों का निर्वहन करने में सक्षम होता। इस न्यायालय ने आगे कहा कि RA, परिभाषा के अनुसार, एक **"उपदेशात्मक आयाम"** रखता है और दिव्यांग व्यक्तियों को समायोजित करने के लिए अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता है और कोई भी संस्था यह कहकर RA प्रदान करने से इनकार नहीं कर सकती है कि इसे प्रदान करने से अनावश्यक जटिलताएँ उत्पन्न होंगी। इस न्यायालय ने यह भी कहा कि RA विश्लेषण में **"आवश्यक विशिष्ट समायोजन, उन्हें प्रदान करने की लागत, भारत और विदेशों में 40-50% से अधिक दृश्य/श्रवण हानि वाले अन्य**

न्यायाधीशों द्वारा आवश्यक समायोजन प्रदान किए जाने के बाद न्यायिक कर्तव्यों का निर्वहन करने की प्रभावकारिता का संदर्भ, अन्य कारकों के अलावा" पर विचार करना आवश्यक था। इसके अतिरिक्त, जीजा घोष और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य में, इस न्यायालय ने उचित समायोजन के सिद्धांत को संवैधानिक समानता गारंटी के एक घटक के रूप में मान्यता दी। इस प्रकार, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, विचाराधीन नियम RA के सिद्धांत का उल्लंघन करता है।

13.7. विद्वान अधिवक्ता ने यह भी बताया कि सक्षम-शारीरिक न्यायाधीश भी अपने दायित्वों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने के लिए नियमित रूप से कर्मचारियों के सहयोग का सहारा लेते हैं। इसमें कोर्ट मास्टर/स्टेनोग्राफर शामिल हैं, जिन्हें न्यायाधीश अपने आदेश और निर्णय लिखवाते हैं। इसमें सचिवालय कर्मचारी और न्यायिक लॉ क्लर्क भी शामिल हैं, जो न्यायाधीश को फाइलों के प्रबंधन, उस न्यायाधीश के न्यायालय में मामलों के संक्षिप्त नोट बनाने और अनुसंधान सहायता जैसे कार्यों में सहायता करने के लिए जिम्मेदार होते हैं। अधिकतम रूप से, यह कहा जा सकता है कि विकलांगता वाले न्यायाधीश को कुछ अतिरिक्त मानवीय सहायता की आवश्यकता होगी। हालांकि, यह अपने आप (ipso facto) गोपनीयता के अधिक नुकसान में तब्दील नहीं होता है। विकलांगता वाले न्यायाधीशों पर अपने विवेक का प्रयोग करने की क्षमता पर भरोसा किया जाना चाहिए, ताकि वे यह निर्धारित कर सकें कि वे अपने कार्यों का निर्वहन इस तरह से कैसे कर सकते हैं जिससे गोपनीयता बनी रहे। मानवीय सहायता, तकनीकी समाधानों के साथ मिलकर, हमारे न्यायिक प्रणाली में नेत्रहीन और कम दृष्टि वाले न्यायाधीशों की प्रभावी भागीदारी को सुगम बना सकती है। इसलिए, यह धारणा कि इन न्यायाधीशों को प्रभावी ढंग से समायोजित नहीं किया जा सकता है, यह तार्किक चुनौतियों से अधिक इस मानसिक अवरोध से उपजी है कि यह संभावना के दायरे से बाहर है।

13.8. अधिवक्ता ने '*It Can Be Done* (इट कैन बी डन)' शीर्षक से एक इंटरव्यू श्रृंखला का हवाला दिया, जिसमें छह न्यायिक क्षेत्रों के 21 दिव्यांग विधिक पेशेवरों के अनुभव साझा किए गए हैं (लेखक: राहुल बजाज, अनुशा रेड्डी, माधवी सिंह)। इसके अतिरिक्त,

उन्होंने दिव्यांग सफल न्यायाधीशों के वास्तविक दुनिया के उदाहरणों का भी हवाला दिया, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

i) टी. चक्रवर्ती, तमिलनाडु से, जिन्हें वर्ष 2009 में कोयंबटूर में तृतीय अपर जिला मुंसिफ नियुक्त किया गया था, उन्होंने 4 वर्ष की आयु में चेचक के कारण अपनी दृष्टि खो दी थी।

(ii) ब्रह्मानंद शर्मा, जिन्होंने 2013 में राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा में 83 वीं रैंक हासिल की और वर्तमान में अजमेर जिले के सरवाड़ शहर में सिविल न्यायाधीश और न्यायिक मजिस्ट्रेट के रूप में कार्यरत हैं, उन्होंने 22 वर्ष की आयु में ग्लूकोमा के कारण अपनी दृष्टि खो दी थी।

(iii) सुश्री हेलेन केलर, जो एक बधिर-दृष्टिहीन दिव्यांग अधिकार कार्यकर्ता हैं, को 2011 में नौ साल के कार्यकाल के लिए यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय की न्यायाधीश के रूप में नियुक्त किया गया था। 2020 से, उन्होंने बोस्निया और हर्जगोविना के संवैधानिक न्यायालय में एक अंतरराष्ट्रीय न्यायाधीश का प्रतिष्ठित पद संभाला है।

अपनी संबंधित दिव्यांगताओं के बावजूद, ऐसा कोई साक्ष्य नहीं मिला जो यह दर्शाता हो कि वे अपने न्यायिक कर्तव्यों का प्रभावी ढंग से निर्वहन करने में असमर्थ थे।

13.9. मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की ओर से प्रस्तुतियों के प्रत्युत्तर में, learned counsel ने प्रस्तुत किया कि मेडिकल कॉलेज जबलपुर के डीन की राय लेने की उच्च न्यायालय की प्रवृत्ति एक पूर्वग्रहयुक्त दृष्टिकोण को दर्शाती है, जिसमें अंधे या कम दृष्टि वाले व्यक्तियों, बधिर या श्रवण बाधित व्यक्तियों, अथवा सेरेब्रल पाल्सी, आत्मविकास (ऑटिज़्म), बौद्धिक अक्षमता, विशिष्ट अधिगम अक्षमता, मानसिक रोग, या बहु-विकलांगता वाले व्यक्तियों के प्रति पूर्व धारणा निहित है। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने वस्तुतः डीन से पूर्व निर्धारित उत्तर प्राप्त करने के लिए एक

अग्रेषित (leading) प्रश्न पूछा। परिणामस्वरूप, डीन ने अपनी राय एक असंवेदनशील और बिना किसी विधिक औचित्य या तर्क के आदेश के रूप में प्रस्तुत की। यह मान्यता कि अंधता न्यायिक कर्तव्यों के निष्पादन में स्वाभाविक बाधा है, पुराने "चिकित्सकीय विकलांगता मॉडल" (Medical Model of Disability) पर आधारित है, जो शारीरिक/मानसिक दुर्बलता को ही विकलांगता मानता है। जबकि वास्तव में, दुर्बलता (impairment) एक शारीरिक या मानसिक स्थिति है, और विकलांगता (disability) तब उत्पन्न होती है जब उस दुर्बलता का टकराव बाहरी बाधाओं से (जैसे - भौतिक, सामाजिक-आर्थिक, राजनीतिक या सांस्कृतिक) होता है। "उचित समायोजन" (Reasonable Accommodation) की अनुपस्थिति या अस्वीकृति प्रभावी रूप से किसी व्यक्ति को उपयुक्त वातावरण से वंचित कर देती है, जो RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 3(2), 3(3), और 3(5) तथा संयुक्त राष्ट्र विकलांगजन अधिकार सम्मेलन (UNCRPD) की धारा 5(3) और अनुच्छेद 2 का उल्लंघन है। न्यायपालिका से दृष्टिबाधित व्यक्तियों को बाहर रखना न केवल डि ज्युरे (de jure) बल्कि डि फैक्टो (de facto) असमानता का उदाहरण है, क्योंकि यह किसी भी वैध राज्य हित की पूर्ति के लिए नहीं किया गया है, बल्कि यह दृष्टिबाधित व्यक्तियों को न्यायपालिका में प्रतिनिधित्व से वंचित कर देता है — वह भी बिना विधिसम्मत प्रक्रिया अपनाए।

13.10. विद्वान अधिवक्ता ने आगे प्रस्तुत किया कि नियम 6A तथा उच्च न्यायालय द्वारा मांगी गई छूट (Exemption) दोनों ही असंवैधानिक हैं, क्योंकि ये भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 और 16(1) तथा RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 3 का उल्लंघन करती हैं। नियम 6A असंवैधानिक है क्योंकि यह उचित समायोजन (Reasonable Accommodation - RA) के सिद्धांत से अनभिज्ञ है। साथ ही, उच्च न्यायालय द्वारा जिस छूट का हवाला दिया गया है, वह भी दोषपूर्ण है क्योंकि: राज्य दिव्यांगजन आयुक्त (State Commissioner for Disability) ने जबलपुर मेडिकल कॉलेज के डीन की राय को यांत्रिक रूप से (mechanically) स्वीकार कर लिया, जबकि यह राय भारत सरकार द्वारा दिनांक 04.01.2021 को जारी अधिसूचना के विपरीत थी, जिसमें "न्यायाधीशों/न्यायिक मजिस्ट्रेटों के पद" को दृष्टिबाधित व्यक्तियों सहित PwD के लिए उपयुक्त (suitable) घोषित किया गया था। इस प्रकार किया गया वर्गीकरण (classification) कोई बुद्धिसंगत अंतर (intelligible differentia) नहीं दिखाता और यह उस उद्देश्य से कोई तर्कसंगत संबंध (rational nexus) नहीं रखता, जिसे उच्च न्यायालय प्राप्त करना चाहता है। इसके अतिरिक्त, नियम 6A 2019 में जारी "दिव्यांगजन के लिए न्याय तक समान पहुंच संबंधी अंतरराष्ट्रीय सिद्धांतों और दिशानिर्देशों (International Principles and Guidelines on

Access to Justice for Persons with Disabilities, 2019)” का भी उल्लंघन करता है। विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि ये दिशानिर्देश संयुक्त राष्ट्र विकलांगजन अधिकार संधि (UNCRPD) के अनुच्छेद 13 की प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया हैं और उसे प्रभावी रूप से लागू करने हेतु प्रेरक का कार्य करते हैं। उन्होंने 1969 की वियना संधि पर संधियों का कानून (Vienna Convention on the Law of Treaties - VCLT) का भी उल्लेख किया, जो अब एक प्रथागत अंतरराष्ट्रीय कानून (customary international law) का दर्जा प्राप्त कर चुका है, और जिसके तहत कोई भी राष्ट्र अपनी संधि-जन्य जिम्मेदारियों के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता।

13.11. अंत में, विद्वान अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि PwD के लिए न्याय की संकल्पना को साकार करने हेतु, हमें विकलांगता की नकारात्मक धारणाओं को त्यागना होगा। **ज्ञानमीमांसा** द्वारा असमानता को समाप्त करने और दिव्यांग व्यक्तियों (PwDs) की समग्र स्थिति में सुधार लाने की खोज, **भिन्नता के प्रति सम्मान** के सद्गुण से प्रेरित होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, **योग्यता के मूल्यांकन** के मानदंड **एबलवादी (Ableist)** और **पितृसत्तात्मक विचारों** से प्रभावित नहीं होने चाहिए। अन्याय का मुकाबला करने और दिव्यांग व्यक्तियों के लिए **समावेशिता** को बढ़ावा देने हेतु, 'हमारे बिना कुछ नहीं' के विचार को दिव्यांग व्यक्तियों के वास्तविक अनुभवों को उचित महत्व देकर स्वीकार किया जाना चाहिए।

विषय: राजस्थान न्यायिक सेवा में दिव्यांग अभ्यर्थियों की भर्ती

[स्वतः संज्ञान रिट याचिका (नागरिक) संख्या 6 / 2024]

14. यह स्वतः संज्ञान रिट याचिका एक दृष्टिबाधित विधि छात्र द्वारा भारत के माननीय प्रधान न्यायाधीश को भेजे गए एक पत्र से उत्पन्न हुई है, जिसमें राजस्थान में दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए न्यायिक सेवा परीक्षाओं में पारदर्शिता की कमी को लेकर शिकायत की गई थी। पत्र याचिकाकर्ता के अनुसार, राजस्थान लोक सेवा आयोग द्वारा न्यायिक सेवा परीक्षा की अधिसूचनाओं में नियम 10, राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 के अनुसार PwD अभ्यर्थियों हेतु आरक्षित पदों का उल्लेख किया जाता है, किंतु राजस्थान

उच्च न्यायालय द्वारा प्रकाशित अंतिम परिणामों में ऐसे आरक्षण का कोई प्रतिबिंब नहीं होता। उक्त याचिकाकर्ता ने यह भी कहा कि राजस्थान उच्च न्यायालय इस स्थिति को "क्षैतिज आरक्षण" कहकर उचित ठहराता है और यह दावा करता है कि अलग कट-ऑफ निर्धारित करना आवश्यक नहीं है। किंतु यह भी तथ्य है कि महिलाएं, विधवाएं, तलाकशुदा इत्यादि — जो कि क्षैतिज आरक्षण श्रेणी में आते हैं — उनके लिए अलग कट-ऑफ अंक निर्धारित किए जाते हैं। इसलिए, पत्र याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय से अनुरोध किया है कि वह हस्तक्षेप कर इस विषय में न्याय एवं समानता सुनिश्चित करे।

15. प्रतिवादीगण इस याचिका में राजस्थान उच्च न्यायालय तथा राज्य सरकार की प्राधिकृत संस्थाएं हैं। याचिका की लंबितता के दौरान, एक रेखा शर्मा नामक महिला ने इस न्यायालय के समक्ष हस्तक्षेप हेतु एक आवेदन दायर किया। अपनी हलफनामा में उन्होंने उल्लेख किया कि राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर द्वारा दिनांक 09.04.2024 को सिविल न्यायाधीश संवर्ग हेतु विज्ञापन जारी किया गया, जिसमें कुल 222 रिक्तियों में से 9 पद PwBD अभ्यर्थियों हेतु आरक्षित थे। आवेदक, जो 40% स्थायी नेत्र दिव्यांगता से पीड़ित हैं, ने प्रारंभिक परीक्षा दी और PwBD श्रेणी में मुख्य परीक्षा के लिए अर्हता प्राप्त की। मुख्य परीक्षा में उन्होंने 300 में से 109 अंक प्राप्त किए, जो कुल अंकों का 36.3% है, तथा विधि पत्र I और II में 100 में से 40.5 अंक प्राप्त किए, जो कि 40.5% के समकक्ष हैं।

16. आवेदक ने आगे प्रस्तुत किया कि विज्ञापन की धारा 23 के अनुसार, कोई भी PwBD अभ्यर्थी साक्षात्कार हेतु तभी पात्र माना जाएगा यदि उसने विधि विषयों में प्रत्येक पत्र में न्यूनतम 30% तथा मुख्य परीक्षा में कुल मिलाकर न्यूनतम 35% अंक प्राप्त किए हों। आवेदिका के मामले में, उन्होंने प्रत्येक विधि पत्र में 30% से अधिक और मुख्य परीक्षा में 35% से अधिक अंक प्राप्त किए थे, फिर भी उन्हें साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया। इन परिस्थितियों में, आवेदिका ने प्रस्तुत किया कि वह इस मामले की

आवश्यक पक्षकार हैं और इस याचिका में पारित होने वाले किसी भी आदेश से प्रभावित होंगी। अतः उन्होंने वर्तमान हस्तक्षेप आवेदन दायर किया।

**C. आयुष यार्डी बनाम मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य[विशेष अनुमति याचिका (नागरिक)
संख्या 12179 / 2024]**

17. अपीलकर्ता के अनुसार, वह एक बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्ति हैं और थैलेसीमिया से पीड़ित हैं, जिससे उन्हें शारीरिक दुर्बलता, थकावट होती है और नियमित रक्त चढ़ाने सहित अन्य चिकित्सीय चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। उन्होंने अन्य अभ्यर्थियों के साथ मिलकर मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 में दिनांक 23.06.2023 को किए गए संशोधन एवं उसके परिणामस्वरूप मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 17.11.2023 को जारी अधिसूचना को चुनौती दी। उक्त संशोधन के अनुसार, नियम 7 को प्रतिस्थापित किया गया, जिसके तहत मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा की प्रारंभिक परीक्षा में सम्मिलित होने हेतु पात्रता की शर्तों में यह जोड़ा गया कि भारतीय नागरिकता, एलएलबी डिग्री जैसे मूल मानदंडों के अतिरिक्त, अभ्यर्थी को या तो बार में 3 वर्षों का अभ्यास करना अनिवार्य है, या यदि वह प्रथम प्रयास में सभी परीक्षाएं उत्तीर्ण करता है और सामान्य/ओबीसी वर्ग हेतु 70% एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग हेतु 50% अंक प्राप्त करता है, तो ही उसे छूट दी जा सकती है। साथ ही अधिसूचना दिनांक 17.11.2023 में यह स्पष्ट किया गया कि इस छूट का लाभ उन्हीं को मिलेगा जिन्होंने किसी भी पूरक परीक्षा में भाग नहीं लिया हो या "Allowed to Keep Terms (ATKT)" का लाभ न लिया हो।

18. अपीलकर्ता ने अपनी एलएलबी डिग्री में कुल 67% अंक प्राप्त किए, लेकिन अपनी अक्षमता के कारण वह प्रथम सेमेस्टर को प्रथम प्रयास में उत्तीर्ण नहीं कर सके और उन्हें पूरक परीक्षा के अंतर्गत ATKT के माध्यम से पुनः परीक्षा में बैठना पड़ा। फलस्वरूप, उक्त संशोधन उन्हें न्यायिक सेवा परीक्षा में भाग लेने के लिए अयोग्य बना देता है। इसलिए, उन्होंने रिट याचिका संख्या 30465 / 2023 दायर कर उक्त संशोधन और अधिसूचना को चुनौती दी, क्योंकि यह PwD अभ्यर्थियों के लिए किसी भी प्रकार की छूट का

प्रावधान नहीं करता। मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने अपीलकर्ता एवं अन्य याचिकाओं को दिनांक 01.04.2024 को खारिज कर दिया, जो कि इस विशेष अनुमति याचिका में चुनौती दी गई है।

अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ

19. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि परीक्षा देने के लिए अर्हता तभी प्राप्त होती है जब अभ्यर्थी ने या तो तीन वर्षों का अधिवक्ता के रूप में अभ्यास किया हो, या एलएलबी पाठ्यक्रम में प्रथम प्रयास में 70% से अधिक अंक प्राप्त किए हों। जहाँ यह नियम अनुसूचित जाति एवं जनजाति वर्ग के लिए शिथिल किया गया है, वहीं दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए कोई छूट प्रदान नहीं की गई है। फलतः 67% अंकों के साथ और 40% अक्षमता वाले अपीलकर्ता चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए अपात्र हो गए। इसलिए, अपीलकर्ता ने इस संशोधित नियम को चुनौती दी है कि विशेष रूप से सक्षम व्यक्तियों को यह छूट दी जानी चाहिए थी। हालांकि, **उच्च न्यायालय** ने संशोधित नियम को बरकरार रखा और रिट याचिकाओं के समूह को खारिज कर दिया। ऐसा करते हुए, इसने **विकलांग व्यक्तियों** के संदर्भ में संशोधन की जांच करने में विफल रहा और अपीलकर्ता की चुनौती को **पूर्णतः सक्षम उम्मीदवारों** के साथ समान माना।

19.1. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, पहले प्रयास में 70% अंकों की कट-ऑफ सीमा को सभी उम्मीदवारों पर समान रूप से लागू करना मनमाना (arbitrary) और तर्कहीन (irrational) है। भारत के विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों की मूल्यांकन प्रणाली (marking scheme) अलग-अलग होती है। यहां तक कि दिल्ली विश्वविद्यालय का विधि संकाय (Faculty of Law, Delhi University) और नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया यूनिवर्सिटी, बेंगलुरु (NLSIU) जैसे शीर्ष संस्थानों के सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले छात्र भी इस मानदंड को पूरा नहीं कर पाते हैं। इस मानदंड को दिव्यांग व्यक्तियों पर भी एक समान रूप से लागू करना अनुचित और मनमाना है। जहाँ तक सामान्य (सक्षम) उम्मीदवारों का संबंध है, यदि वे इस पात्रता मानदंड को पूरा नहीं कर पाते हैं, तो वे तीन

वर्षों की वकालत पूरी करके पात्रता प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन यह विकल्प दिव्यांग उम्मीदवारों के लिए व्यावहारिक नहीं हो सकता, क्योंकि अधिकांश सार्वजनिक स्थानों सहित अदालत परिसर और न्यायालय भवन दिव्यांगों के अनुकूल नहीं हैं, और उनमें बुनियादी आधारभूत सुविधाओं का अभाव है, जिससे विशेष रूप से दृष्टिबाधित, गतिशीलता से बाधित या अन्य बेंचमार्क विकलांगता वाले व्यक्तियों के लिए वकालत करना अत्यंत कठिन हो जाता है।

19.2. अपीलकर्ता, जो कि थैलेसीमिया से ग्रस्त हैं, के लिए न्यायालयों में अभ्यास करना शारीरिक रूप से अत्यंत कष्टदायक और चुनौतीपूर्ण है। अतः यह मांग की गई कि—प्रथम प्रयास में उत्तीर्णता, 70% अंकों की शर्त, पूरक परीक्षा से मुक्त रहने की शर्त —इनमें से कोई भी दिव्यांगों पर लागू न की जाए क्योंकि शारीरिक रूप से अक्षम अभ्यर्थी न्यायिक दायित्वों का निर्वहन भली-भांति कर सकते हैं, भले ही वे वकालत के व्यावहारिक कार्यों जैसे सीढ़ियाँ चढ़ना, भारी फाइल उठाना, चलना इत्यादि करने में कठिनाई अनुभव करें। इन परिस्थितियों में, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि **बेंचमार्क दिव्यांगता** वाले उम्मीदवारों के संबंध में 3-वर्षीय अभ्यास पर जोर देना अनुचित है, विशेषतः यदि वे कुल मिलाकर 70% अंक प्राप्त नहीं कर पाए या उन्हें पूरक परीक्षा देनी पड़ी, खासकर यदि इसका कारण उनकी दिव्यांगता थी। इसलिए, यह **परंतु खंड** भेदभावपूर्ण और मनमाना है क्योंकि यह **असमानों के साथ समान व्यवहार करता है**, जिससे **भारत के संविधान के अनुच्छेद 14** का उल्लंघन होता है।

19.3. अंततः तर्क दिया गया कि संशोधित नियम 7 और अधिसूचना दिनांक 17.11.2023, इस सीमा तक कि वे दिव्यांग अभ्यर्थियों के लिए किसी छूट का प्रावधान नहीं करते, असंवैधानिक, मनमाने और अमान्य हैं। अतः जो दिव्यांग अभ्यर्थी अन्यथा योग्य हैं (जैसे कि उनके पास एल एल बी है), उन्हें प्रारंभिक परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति दी जानी चाहिए, बिना इस शर्त के कि उन्होंने नियम 7 मध्य प्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा शर्तें) के उपबंध की सभी आवश्यकताओं का अनुपालन किया हो।

मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय की ओर से अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ

20. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, इसी आदेश के विरुद्ध दायर विशेष अनुमति याचिकाएँ —SLP (C) संख्या 9570 / 2024 (गरिमा खरे बनाम मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय), तथा SLP (C) संख्या 9885 / 2024 (तेजस त्रिपाठी बनाम मध्यप्रदेश राज्य) —इस न्यायालय द्वारा क्रमशः 26.04.2024 एवं 03.05.2024 को खारिज कर दी गई हैं।

21. वर्तमान अपीलकर्ता के संबंध में विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता ने इस न्यायालय के आदेश दिनांक 15.12.2023 (SLP(C) No.27337 / 2024) के आधार पर वर्ष 2023 की सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ श्रेणी) भर्ती प्रक्रिया में भाग लिया और प्रारंभिक परीक्षा उत्तीर्ण की। इसके पश्चात्, इस न्यायालय द्वारा दिनांक 21.03.2024 को S.M.W. (C) संख्या 2 / 2024 में पारित अंतरिम आदेश के अनुसार, मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने आदेश दिनांक 21.03.2024 को रिट याचिका संख्या 7452 / 2024 में यह निर्देश दिया कि वे सभी PwD अभ्यर्थी, जिन्होंने न्यूनतम अर्हक अंक प्राप्त किए हैं, मुख्य परीक्षा में भाग लें। फलतः, कुल 35 PwD अभ्यर्थियों में से 31 अभ्यर्थियों (जिसमें अपीलकर्ता भी सम्मिलित हैं) ने मुख्य परीक्षा में भाग लिया। परिणाम दिनांक 10.05.2024 को घोषित किया गया। इसके बाद, इस न्यायालय ने 21.05.2024 को आदेश दिया कि यदि कोई अभ्यर्थी आरक्षित वर्ग (SC/ST) के न्यूनतम अर्हक अंक प्राप्त करता है, तो उसे साक्षात्कार हेतु बुलाया जाएगा — इस शर्त पर कि याचिका का अंतिम परिणाम लंबित रहेगा। इनमें से केवल 1 अभ्यर्थी न्यूनतम कट-ऑफ (प्रत्येक पेपर में 45 अंक) प्राप्त कर साक्षात्कार हेतु पात्र पाया गया। अपीलकर्ता उक्त अंक प्राप्त नहीं कर सके, अतः उन्हें साक्षात्कार हेतु आमंत्रित नहीं किया गया। हालांकि, इस न्यायालय ने दिनांक 28.05.2024 को आदेश पारित कर अपीलकर्ता को साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति दी। इसके प्रत्युत्तर में, मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय ने स्पष्टता हेतु आवेदन (I.A. No.135745 / 2024) दायर किया, यह स्पष्ट करने हेतु कि अपीलकर्ता को साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति तभी दी जानी चाहिए थी जब वह न्यूनतम अर्हक अंक (प्रत्येक पेपर में 45 अंक) प्राप्त करते। उक्त आवेदन अभी न्यायालय के समक्ष लंबित है। अतः, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि चूंकि अपीलकर्ता ने यह न्यूनतम अर्हता प्राप्त नहीं की है, अतः उन्हें साक्षात्कार में सम्मिलित होने की अनुमति देना अन्य दिव्यांग

अभ्यर्थियों के साथ अन्याय होगा और भविष्य की चयन प्रक्रिया में विसंगति उत्पन्न करेगा।

**D. आलोक सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य एवं अन्य[विशेष अनुमति याचिका (नागरिक)
संख्या 7683 / 2024]**

22. अपीलकर्ता के अनुसार, वह 40% स्थायी कम दृष्टि (low vision) से पीड़ित एक दिव्यांग व्यक्ति है। उसकी यह गंभीर शिकायत है कि, मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा आयोजित 2021 की सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) प्रवेश स्तर परीक्षा में, लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार में कुल योग में दो अन्य चयनित दिव्यांग उम्मीदवारों से अधिक अंक प्राप्त करने के बावजूद, उसे चयनित नहीं किया गया। अपीलकर्ता का तर्क है कि RPwD अधिनियम, 2016 के तहत जो आवश्यक छूटें और रियायतें प्रदान की जानी थीं, उन्हें लागू नहीं किया गया, जिसके कारण दिव्यांगों के लिए आरक्षित पदों को वर्ष दर वर्ष रिक्त ही रखा गया, जिससे न केवल अपीलकर्ता का वैध चयन वंचित हुआ, बल्कि RPwD अधिनियम, 2016 का उद्देश्य भी निष्फल हो गया। इसीलिए, अपीलकर्ता ने रिट याचिका संख्या 11175 of 2023 दायर की, जिसमें 18.02.2023 को जारी अंतिम परिणाम को चुनौती दी गई है — विशेष रूप से उस भाग को, जिसमें अपीलकर्ता को अनारक्षित श्रेणी के तहत शारीरिक रूप से विकलांग कोटे की रिक्त सीट पर नियुक्त नहीं किया गया। उच्च न्यायालय ने दिनांक 11.01.2024 के निर्णय और आदेश द्वारा उक्त रिट याचिका को खारिज कर दिया

23. अपीलकर्ता की ओर से अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ:

विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा सिविल न्यायाधीश (जूनियर डिवीजन) प्रवेश स्तर के पदों पर भर्ती के लिए जारी विज्ञापन में, RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 34 के अंतर्गत 4 प्रतिशत कोटा PwD उम्मीदवारों के लिए निर्धारित किया गया था। अपीलकर्ता ने उक्त पद के लिए आवेदन किया और प्रारंभिक परीक्षा एवं मुख्य परीक्षा दोनों में योग्यता प्राप्त कर ली, और इसके बाद साक्षात्कार (interview) प्रक्रिया में सम्मिलित हुआ। हालाँकि, दिनांक 18.02.2023 को

जारी अंतिम परिणाम में उसका नाम शामिल नहीं किया गया, जबकि शारीरिक रूप से विकलांग (PH) कोटे के तहत अनारक्षित श्रेणी में रिक्त पद उपलब्ध थे। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 34 के अनुसार, PwD के लिए आरक्षित रिक्त पदों को केवल उसी स्थिति में आगे के वर्षों के लिए अग्रेषित किया जा सकता है, जब कोई उपयुक्त PwD उम्मीदवार उपलब्ध न हो। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता को साक्षात्कार में 50 में से 18.1 अंक प्राप्त हुए, जो कि न्यूनतम निर्धारित योग्यता 20 अंकों से मात्र 2 अंक कम हैं (जो कि 50 अंकों का 40% है)। अतः यह प्रस्तुत किया गया कि अपीलकर्ता को नियुक्ति में समायोजित किया जाना चाहिए था, बजाय इसके कि पद को खाली छोड़कर आगे के वर्ष में स्थानांतरित कर दिया जाए।

23.1 विद्वान अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 34 के आलोक में भारत सरकार द्वारा दिनांक 15.01.2018 को जारी कार्यालय ज्ञापन (Office Memorandum) में PwBD (Persons with Benchmark Disabilities) उम्मीदवारों के मामलों में उपयुक्तता के मानकों में शिथिलता (relaxation of standards of suitability) के लिए स्पष्ट निर्देश दिए गए हैं। उक्त ज्ञापन की धारा 11 यह सुदृढ़ करती है कि यदि बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों की पर्याप्त संख्या में उपलब्धता नहीं हो, तो उपयुक्तता के मानकों में छूट दी जानी चाहिए। इस विषय में, विद्वान अधिवक्ता ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय भारत संघ बनाम नेशनल फेडरलिस्म ऑफ ब्लाइंड 1

-
-

इस न्यायालय ने पैरा 51, 52 और 54 में यह अभिनिर्धारित किया है कि राज्य सरकारों के साथ-साथ केंद्र शासित प्रदेशों का भारत के संविधान के अंतर्गत और सामान्य मानवाधिकारों से संबंधित विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय संधियों तथा विशेष रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए संधियों के तहत, विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करने का स्पष्ट दायित्व है। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय ने अधिकारियों को निर्देश दिया कि वे इसमें चुनौती दिए गए कार्यालय ज्ञापन और उसके बाद के ज्ञापनों को संशोधित करने के आदेश जारी करें ताकि विकलांग व्यक्तियों के लिए उपलब्ध रिक्तियों की संख्या की गणना निर्धारित समय के भीतर की जा सके और इसमें जारी निर्देशों को भी लागू किया जा सके। यह भी अभिनिर्धारित किया गया

था कि विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण योजना का अनुपालन न करना अवज्ञा का कार्य माना जाना चाहिए, और संबंधित विभाग, सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम, या सरकारी कंपनी का नोडल अधिकारी इसके सख्त कार्यान्वयन के लिए जिम्मेदार है। प्रस्तुत मामले में, 7 सीटों में से केवल 2 भरी गईं। अतः, अपीलार्थी की विकलांगता और पात्रता को ध्यान में रखते हुए उसे समायोजित करने के लिए मानकों में ढील दी जानी चाहिए थी, और प्रतिवादी संख्या चार द्वारा अपीलार्थी को सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ खंड (प्रवेश स्तर) के पद पर नियुक्ति से इनकार करने की कार्रवाई, अनारक्षित श्रेणी के अंतर्गत पीएच कोटा के तहत साक्षात्कार में न्यूनतम कट-ऑफ अंकों के मानदंड के आधार पर, रिक्त पद होने के बावजूद, विकृत और मनमानी है। यह विशेष रूप से प्रस्तुत किया गया था कि यद्यपि अपीलार्थी ने चयन के लिए पात्र 237.85 अंक प्राप्त किए थे, उसे चयनित नहीं किया गया, बल्कि 218.78 अंक प्राप्त करने वाले उम्मीदवार (रोल नं. 1028) को चयनित किया गया। यदि अपीलार्थी को शिथिल मानक का लाभ नहीं दिया जाता है, तो यह भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, 16 और 21 का सरासर उल्लंघन होगा और साथ ही RPwD अधिनियम, 2016 के उद्देश्य को भी विफल करेगा क्योंकि कार्यालय ज्ञापन केवल RPwD अधिनियम, 2016 के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए तैयार किया गया था।

23.2 विद्वान् अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि 11.01.2024 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए क्योंकि इसमें RPwD अधिनियम, 2016 के अंतर्गत अपीलकर्ता के अधिकारों को पर्याप्त रूप से विचारित नहीं किया गया। यह भी कहा गया कि 2021 की भर्ती प्रक्रिया ने RPwD अधिनियम, 2016 का उल्लंघन किया, और दिव्यांग व्यक्तियों के लिए आवश्यक समुचित प्रावधान नहीं किए। विवादित आदेश के पैरा 8 में यह कहा गया है कि चूंकि अपीलकर्ता की दिव्यांगता – कम दृष्टि (lowvision) – केवल साक्षात्कार के दौरान मौखिक प्रश्नों का उत्तर देने में बाधक नहीं बनती, अतः वह साक्षात्कार में छूट का पात्र नहीं है। Learned counsel ने इस विचार को अस्वीकार करते हुए सुप्रीम कोर्ट के निर्णय विकास कुमार बनाम यू पी एस सी (2021) 5 SCC 370 पर भरोसा किया, जिसमें यह कहा गया कि यदि उचित समायोजन (Reasonable Accommodation) दिया जाए तो दिव्यांग व्यक्ति प्रभावी रूप से अपने कर्तव्यों का निर्वहन कर सकते हैं। साथ ही यह भी माना गया कि राज्य का यह कर्तव्य है कि वह दिव्यांग व्यक्तियों की पूर्ण और प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित करे। इसलिए Learned

counsel ने यह तर्क दिया कि उच्च न्यायालय का यह निष्कर्ष त्रुटिपूर्ण है कि अपीलकर्ता की दिव्यांगता का साक्षात्कार पर कोई प्रभाव नहीं था।

23.3 विद्वान् अधिवक्ता ने आगे यह तर्क दिया कि प्रवेश स्तर की भर्ती के लिए, जैसे कि सिविल न्यायाधीश पद, वहां साक्षात्कार में न्यूनतम अर्हता अंक निर्धारित नहीं किए जाने चाहिए। इस तर्क के समर्थन में दो सुप्रीम कोर्ट निर्णयों का उल्लेख किया गया:

•

(i) डॉ. कविता खंबोज बनाम पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय एवं अन्य के मामले में यह कहा गया था कि 'प्रवेश स्तर के कनिष्ठ अधिकारियों के लिए मौखिक परीक्षा लागू नहीं हो सकती है' और (ii) अभिमीत सिन्हा एवं अन्य बनाम पटना उच्च न्यायालय एवं अन्य के मामले में, जहाँ प्रवेश स्तर और उच्च स्तर पर भर्ती के बीच के अंतर को बरकरार रखते हुए, यह इंगित किया गया था कि 'केवल साक्षात्कार या मौखिक परीक्षा पात्रता मापने का एक समग्र मानदंड नहीं हो सकती है'। चूंकि वर्तमान भर्ती सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ खंड (प्रवेश स्तर) से संबंधित है, इसलिए मौखिक परीक्षा में न्यूनतम कट-ऑफ निर्धारित करना उम्मीदवारों को अनुचित रूप से नुकसान पहुंचाता है, जिससे विसंगतियां पैदा होती हैं, जैसे कि अपीलार्थी का मामला, जहाँ उच्च कुल अंकों के बावजूद, उसका चयन नहीं हुआ। विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि 2018 से पहले, भर्ती के मौखिक परीक्षा घटक के लिए न्यूनतम अंकों का कोई निर्धारण नहीं था, जो यह दर्शाता है कि अधीनस्थ न्यायपालिका में प्रवेश स्तर की भर्ती के लिए ऐसे कड़े मानदंड निर्धारित करने के खतरों पर उचित विचार किया गया था, विशेष रूप से जब उम्मीदवार प्रारंभिक और लिखित परीक्षाओं के चरणों को उत्तीर्ण करने के बाद केवल मौखिक परीक्षा के अंतिम चरण में विफल हो जाते हैं।

23.4 विद्वान् अधिवक्ता ने अंततः यह प्रस्तुत किया कि 2021 की भर्ती प्रक्रिया के अंतर्गत PH कोटे की 6 सीटें रिक्त रह गई थीं, जो अब आगे के वर्षों के लिए अग्रेषित (carry forward) कर दी गई हैं। इसके अतिरिक्त, 2022 की भर्ती प्रक्रिया अभी पूर्ण नहीं हुई है और 10.05.2024 को घोषित मुख्य परीक्षा के परिणाम में कोई भी PH श्रेणी का

उम्मीदवार साक्षात्कार के लिए पात्र नहीं हुआ। अतः, वर्तमान में, 2022 की चयन प्रक्रिया की रिक्त PH सीटें और 2021 की शेष सीटें आगामी भर्ती में फिर से सम्मिलित की जाएंगी। इस परिस्थिति में, **विद्वान् अधिवक्ता** ने प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता, जो पूर्ण रूप से पात्र है और जिसे कानूनी रूप से छूट मिलनी चाहिए थी, को उपलब्ध PH सीटों पर नियुक्ति हेतु समायोजित किया जाना चाहिए।

मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय की ओर से अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ

24.

विद्वान् अधिवक्ता के अनुसार, अनारक्षित श्रेणी के तहत शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए कुल **चार पद आरक्षित** थे। अपीलार्थी प्रारंभिक परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ और मुख्य परीक्षाओं में भी सफल रहा। 21.12.2021 के विज्ञापन में दिए गए चयन मानदंड के अनुसार, नियुक्ति के लिए पात्र होने हेतु साक्षात्कार में **न्यूनतम 40% अंक** प्राप्त करना आवश्यक था। तदनुसार, साक्षात्कार में 50 में से 20 या अधिक अंक प्राप्त करने वाला उम्मीदवार ही नियुक्ति के लिए विचार किए जाने हेतु पात्र था। चूंकि अपीलार्थी ने साक्षात्कार में 18.1 अंक प्राप्त किए, अतः उसे नियुक्ति के लिए विचार नहीं किया गया।

24.1. विद्वान् अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि अपीलकर्ता की इस दलील को कि वह RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 34 के अंतर्गत लाभ का पात्र है और उसे कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग (DoPT) द्वारा दिनांक 15.01.2018 को जारी कार्यालय ज्ञापन (Office Memorandum) की धारा 11 के अनुसार उपयुक्तता के मानकों में शिथिलता (relaxation of standards of suitability) दी जानी चाहिए, उच्च न्यायालय ने अस्वीकार कर दिया। अस्वीकृति का आधार यह था कि अपीलकर्ता साक्षात्कार में न्यूनतम योग्यता अंक प्राप्त करने में असफल रहा। साथ ही यह तर्क दिया गया कि अपीलकर्ता चयन प्रक्रिया के मापदंडों से पूर्णतः अवगत था और इसके बावजूद चयन प्रक्रिया में भाग लिया, अतः अब असफल रहने के बाद वह इन मानकों को चुनौती नहीं दे सकता। Learned counsel ने यह भी कहा कि साक्षात्कार में न्यूनतम अंक तय करने का निर्णय इस मान्यता के

अनुरूप है कि न्यायिक पद के लिए चयनित व्यक्ति में कुछ न्यूनतम स्तर की अभिव्यक्ति, स्पष्टता और न्यायिक उपयुक्तता होनी चाहिए। यह मानक पहले भी इस न्यायालय द्वारा स्वीकार किए जा चुके हैं — जैसे किकविता खंबोज बनाम पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, अभिमीत सिन्हा बनाम पटना उच्च न्यायालय। अतः विद्वान् अधिवक्ता ने यह तर्क दिया कि विवाद का एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ता उपयुक्तता के मानकों में छूट का पात्र है, और यदि हां, तो उसकी सीमा क्या होनी चाहिए।

24.2 विद्वान् अधिवक्ता ने RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 34 और कार्मिक विभाग की दिनांक 15.01.2018 की परिपत्र संख्या का संदर्भ लेते हुए तर्क दिया कि: यह कार्यालय ज्ञापन केवल केंद्र सरकार की सेवाओं और पदों पर लागू होता है, और वर्तमान मामला राज्य सरकार के न्यायिक सेवा चयन से संबंधित है, अतः यह यहाँ लागू नहीं होता। चयन प्रक्रिया में आमतौर पर दो स्तरों के मानदंड (benchmarks) होते हैं: पहला: पात्रता (eligibility) के लिए न्यूनतम अंकों की आवश्यकता, दूसरा: चयन (selection) के लिए कट-ऑफ, जो सभी प्रतिभागियों के प्रदर्शन पर आधारित होता है। वर्तमान मामले में, अपीलकर्ता प्रवेश स्तर (entry level) की पात्रता प्राप्त करने हेतु निर्धारित साक्षात्कार में न्यूनतम 20 अंक भी प्राप्त नहीं कर पाया, अतः वह चयन के लिए योग्य ही नहीं था, भले ही उसके मुख्य परीक्षा में अंक किसी चयनित उम्मीदवार से अधिक रहे हों। विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी बताया कि वर्ष 2021 की परीक्षा में: एक उम्मीदवार ने अंगविकृति (locomotor disability) के साथ, और एक अन्य उम्मीदवार ने कम दृष्टि (low vision disability) के साथ, साक्षात्कार में न्यूनतम आवश्यक अंक प्राप्त किए और उन्हें नियुक्त भी किया गया। इसलिए, अपीलकर्ता का RPwD अधिनियम की धारा 34(2) पर आधारित दावा भी असंगत है, क्योंकि केवल उम्मीदवार का उपलब्ध होना ही पर्याप्त नहीं है — बल्कि उसे चयन के लिए निर्धारित न्यूनतम अर्हता (qualifying marks) भी प्राप्त करने होते हैं। अंत में, Learned counsel ने यह कहा कि: PwBD (Persons with Benchmark Disabilities) उम्मीदवारों या किसी अन्य वर्ग के लिए न तो अलग कट-ऑफ और न ही विशेष छूट किसी विज्ञापन (दिनांक 21.12.2021) या सर्कुलर में दी गई है। यहां तक कि इस न्यायालय ने भी 07.11.2024 के आदेश में, जो एस एम डब्ल्यू (दीवानी) No.2 of 2024 में पारित हुआ, साक्षात्कार स्तर पर PwBD के लिए अलग न्यूनतम अर्हता निर्धारित करने का निर्देश नहीं दिया। अतः विद्वान् अधिवक्ता का निष्कर्ष यह था कि उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश त्रुटिरहित है और इसमें कोई हस्तक्षेप आवश्यक नहीं है।

E. मानवेन्द्र सिंह राठोड एवं अन्य बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य [रिट याचिका (दीवानी) संख्या .484/2024] एवं अलीशा खान बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य [रिट याचिका (दीवानी) संख्या.494 /2024]

25. वर्तमान रिट याचिकाओं के याचिकाकर्ता राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा, 2024 के अभ्यर्थी थे। प्रथम प्रतिवादी (राजस्थान उच्च न्यायालय) द्वारा दिनांक 09.04.2024 को सिविल न्यायाधीश संवर्ग प्रत्यक्ष भर्ती परीक्षा, 2024 के लिए अधिसूचना जारी की गई, जिसमें कुल 222 पदों की घोषणा की गई —अर्थात् वर्ष 2022 के लिए 83 पद, वर्ष 2023 के लिए 57 पद, वर्ष 2024 के लिए 82 पद। इनमें से 9 पद PwBD (Persons with Benchmark Disabilities) अभ्यर्थियों के लिए आरक्षित किए गए थे, जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया गया: दृष्टिबाधित / कम दृष्टि – 2 पद, बधिर / श्रवण बाधित – 3 पद, अंगविकृति – 2 पद, आत्मविकास सम्बन्धी विकलांगता (Autism) – 2 पद। इन सभी पदों पर क्षैतिज आरक्षण लागू था, जो कि कुल रिक्तियों पर लागू होता है, न कि किसी विशिष्ट वर्ग के भीतर। साथ ही, PwBD श्रेणी के उम्मीदवारों को प्रारंभिक परीक्षा में न्यूनतम 40% अंक प्राप्त करना आवश्यक था ताकि वे मुख्य परीक्षा के लिए पात्र माने जा सकें। अधिसूचना के खंड 23(ii) में यह प्रावधान था कि प्रत्येक वर्ग (category-wise) में मुख्य परीक्षा के लिए कुल रिक्तियों की पंद्रह गुना संख्या में अभ्यर्थियों को बुलाया जाएगा, और अंतिम चयन सीमा (cut-off) पर यदि एक से अधिक अभ्यर्थी हों, तो सभी को शामिल किया जाएगा। इस आधार पर, तर्क दिया गया कि विभिन्न ऊर्ध्व आरक्षित वर्गों के अंतर्गत कम से कम 135 PwBD अभ्यर्थियों को मुख्य परीक्षा में सम्मिलित किया जाना चाहिए था। हालाँकि, वास्तव में केवल 11 PwBD अभ्यर्थियों को ही मुख्य परीक्षा हेतु चयनित किया गया। इसके अतिरिक्त, प्रथम प्रतिवादी (राजस्थान उच्च न्यायालय) द्वारा 15.07.2024 को प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम घोषित करते समय PwBD श्रेणी के लिए कोई पृथक कट-ऑफ अंक नहीं दर्शाया गया, जिससे यह पता लगाना संभव नहीं था कि PwBD वर्ग के लिए न्यूनतम अर्हता अंक क्या रहे। इसके विपरीत, महिलाओं, तलाकशुदा महिलाओं, विधवाओं जैसे अन्य क्षैतिज आरक्षण वर्गों के लिए स्पष्ट रूप से अलग कट-ऑफ अंक घोषित किए गए थे। याचिकाकर्ताओं ने दावा किया कि प्रथम प्रतिवादी द्वारा की गई यह चूक उन्हें एवं अन्य PwBD अभ्यर्थियों को चयन प्रक्रिया में स्पष्टता एवं पारदर्शिता से वंचित करती है और न्यायसंगत अवसर

से भी।इसीलिए, उन्होंने वर्तमान रिट याचिकाएं दाखिल की हैं, जिनमें उन्होंने यह निर्देश मांगा है कि प्रथम प्रतिवादी PwBD श्रेणी के लिए अलग से परिणाम एवं कट-ऑफ घोषित करे, जिससे उनके संवैधानिक और वैधानिक अधिकारों की रक्षा हो सके।

याचिकाकर्ताओं की ओर से अधिवक्ताओं की प्रस्तुतियाँ

26. याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ: विद्वान् अधिवक्ता ने यह प्रस्तुत किया कि PwD (Persons with Disabilities) श्रेणी के लिए अलग कट-ऑफ घोषित किए बिना, प्रथम प्रतिवादी ने प्रत्येक PwD उम्मीदवार के ऊर्ध्व (vertical) वर्ग के अनुसार सामान्य कट-ऑफ लागू कर दिया।इसका अर्थ यह हुआ कि PwD उम्मीदवारों को उन्हीं के ऊर्ध्व वर्ग (जैसे सामान्य, ओबीसी, एससी, एसटी) के उम्मीदवारों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी —जिससे आरक्षण का उद्देश्य ही विफल हो गया। उदाहरण के रूप में, PwD श्रेणी का एक उम्मीदवार, जिसने प्रारंभिक परीक्षा में 72 अंक प्राप्त किए, उसे मुख्य परीक्षा में सम्मिलित नहीं किया गया, क्योंकि उसके ऊर्ध्व वर्ग (सामान्य वर्ग) के लिए कट-ऑफ 73 अंक था। इस प्रकार की प्रक्रिया स्पष्ट रूप से उन वैधानिक नियमों का उल्लंघन है, जिनमें PwD अभ्यर्थियों को एक अलग वर्ग (separate class) के रूप में मान्यता दी गई है। विशेष रूप से, यह निम्नलिखित नियमों का उल्लंघन करता है: “दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकार नियम, 2017” का नियम 11(4) “राजस्थान दिव्यांगजन अधिकार नियम, 2018” का नियम 5 इन नियमों में यह स्पष्ट किया गया है कि PwD उम्मीदवारों के लिए रक्तियां एक पृथक वर्ग के रूप में मानी जाएंगी, न कि ऊर्ध्व वर्गों के अधीन।विद्वान् अधिवक्ता ने इसके समर्थन में 09.04.2024 की अधिसूचना के खंड 15(iii) की ओर भी ध्यान आकर्षित किया, जिसमें यह कहा गया था कि चयनित PwD उम्मीदवारों को उनके संबंधित ऊर्ध्व वर्गों में समायोजित किया जाएगा।इसका तात्पर्य यह हुआ कि PwD उम्मीदवारों की स्वतंत्र प्रतिस्पर्धा और पृथक कट-ऑफ घोषित किया जाना आवश्यक था —जिसे प्रथम प्रतिवादी ने जानबूझकर नजरअंदाज किया, जिससे PwD वर्ग के उम्मीदवारों के साथ भेदभाव हुआ।

26.1. विद्वान् अधिवक्ता ने आगे यह प्रस्तुत किया कि समान प्रकृति के एक मामले में, रिट याचिका (दीवानी) No.710 / 2024, सिद्धार्थ शर्मा बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य में,इस न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) ने दिनांक 24.10.2024 को पारित आदेश में याचिकाकर्ता, जो कि एक दृष्टिबाधित PwD उम्मीदवार था, को राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा, 2024 के साक्षात्कार चरण में सम्मिलित होने की अनुमति प्रदान

की। यह आदेश इस आधार पर पारित किया गया कि चयन प्रक्रिया समुचित रूप से निष्पादित नहीं की गई थी, जिससे याचिकाकर्ता जैसे दिव्यांग अभ्यर्थियों को अन्याय हुआ। उसी संदर्भ में, विद्वान् अधिवक्ता ने यह भी उल्लेख किया कि एक अन्य मामला — रिट याचिका (दीवानी डायरी संख्या .49998 / 2024, तिथान जांगिड बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय एवं अन्य में —

यह न्यायालय, अपने अंतरिम आदेश दिनांक 25.10.2024 के माध्यम से, याचिकाकर्ता (जो 60% लोकोमोटर दिव्यांगता से पीड़ित था) को राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा, 2024 के साक्षात्कार दौर में भाग लेने की अनुमति दी। इस प्रकार, केवल 2 उम्मीदवारों को, जिन्होंने इस न्यायालय से अंतरिम राहत प्राप्त की थी, साक्षात्कार दौर में उपस्थित होने का अवसर मिला और उन्होंने 27.10.2024 के परिणाम के अनुसार रिक्तियों के विरुद्ध सीटें प्राप्त कीं; और दिव्यांग व्यक्तियों (PwD) के लिए शेष आरक्षित सीटों को सामान्य श्रेणी की सीटों में परिवर्तित कर तदनुसार भरा गया। उक्त नियुक्ति को इस न्यायालय ने अपने अंतिम आदेश दिनांक 07.11.2024 द्वारा भी पुष्टि की थी।

पहले प्रतिवादी के चयन प्रक्रिया में प्रारंभिक परीक्षा के चरण से ही त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण के कारण, पर्याप्त और सही संख्या में दिव्यांग उम्मीदवारों का बाद के दौरों में चयन नहीं हो सका, जिसके परिणामस्वरूप उनके लिए आरक्षित रिक्तियों की पूर्ति नहीं हुई। परिणामस्वरूप, व्यापक रूप से भिन्न क्षमताओं वाले व्यक्तियों को एक ही श्रेणी के तहत प्रतिस्पर्धा करने के लिए मजबूर किया गया, जिससे बड़ी संख्या में पात्र दिव्यांग उम्मीदवार चयन प्रक्रिया से बाहर हो गए। चूंकि उन्हें अपनी संबंधित ऊर्ध्वाधर श्रेणियों में पूर्ण-सक्षम उम्मीदवारों के साथ प्रतिस्पर्धा करनी पड़ी, इसलिए चयन प्रक्रिया संविधान और RPwD अधिनियम, 2016 की भावना के प्रतिकूल थी।

राजस्थान उच्च न्यायालय की ओर से अधिवक्ता की प्रस्तुतियाँ

27. विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 09.04.2024 के विज्ञापन के अनुसरण में सिविल जज कैडर सीधी भर्ती परीक्षा, 2024 में भाग लिया और 23.06.2024 को आयोजित प्रारंभिक परीक्षा में शामिल हुए। चूंकि याचिकाकर्ता मुख्य परीक्षा के लिए अर्हक अंक प्राप्त नहीं कर सके, इसलिए उन्होंने वर्तमान रिट याचिका दायर की है।

27.1 अग्रिम रूप से प्रस्तुत करते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने यह भी प्रस्तुत किया कि उपरोक्त रिट याचिकाओं की लंबितता के दौरान, सिविल न्यायाधीश संवर्ग के लिए मुख्य परीक्षा 31.08.2024 एवं 01.09.2024 को आयोजित की गई थी, जिसका परिणाम 01.10.2024 को घोषित किया गया। इसके पश्चात्, 16.10.2024 से 26.10.2024 के मध्य साक्षात्कार आयोजित किए गए और 222 चयनित अभ्यर्थियों की मेरिटवार सूची 27.10.2024 को घोषित की गई, जिसके संबंध में एक संशोधन (corrigendum) दिनांक 07.11.2024 को जारी किया गया।

27.2 इसके आगे प्रस्तुत किया गया कि राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 के नियम 10 में PwD (विकलांग व्यक्तियों) के लिए आरक्षण प्रदान किया गया है, जिसके अनुसार न्यायिक सेवा में भर्ती के लिए बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों के लिए रिक्तियों का आरक्षण समय-समय पर राज्य द्वारा संशोधित नियमों के अनुसार होगा। अतः यह इंगित किया गया कि दिनांक 16.03.2024 की अधिसूचना द्वारा राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 में एक संशोधन किया गया, जिसके अंतर्गत बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों के पक्ष में आयु में छूट और अंकों में 5% की रियायत प्रदान की गई।

27.3 आगे यह प्रस्तुत किया गया कि राजस्थान राज्य में सिविल न्यायाधीश संवर्ग की भर्ती के संदर्भ में बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों के लिए पृथक कट-ऑफ अंक घोषित किए जाने के मुद्दे पर इस माननीय न्यायालय ने सिविल अपील सं. 5051/2023 एवं 5052/2023 में दिनांक 21.08.2024 के निर्णय में निम्नलिखित अवलोकन किया:

"15.... उत्तरदाताओं ने प्रारंभिक परीक्षा का परिणाम घोषित करने वाली अधिसूचना में सभी वर्गों के लिए कट-ऑफ अंक उचित रूप से दर्शाए, सिवाय बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों की श्रेणी के। बेंचमार्क दिव्यांगता वाले व्यक्तियों को उस श्रेणी के अंतर्गत समायोजित होने के लिए, जिसमें उन्होंने आवेदन किया था, उस श्रेणी के लिए निर्धारित न्यूनतम कट-ऑफ अंक प्राप्त करना आवश्यक था। अन्य श्रेणियों के लिए कट-ऑफ अंकों का निर्धारण और बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों की श्रेणी के लिए कट-ऑफ अंकों का निर्धारण न किया जाना न तो मनमाना कहा जा सकता है और न ही यह अपीलकर्ताओं के किसी भी मौलिक अधिकार का उल्लंघन माना जा सकता है।"

अतः, विद्वान अधिवक्ता के अनुसार, वर्ष 2024 की सिविल न्यायाधीश संवर्ग भर्ती प्रक्रिया में याचिकाकर्ताओं को कोई राहत प्रदान नहीं की जा सकती।

याचिकाकर्ताओं के पक्ष में प्रस्तुत विद्वान अधिवक्ता का प्रत्युत्तर

28. विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि सिविल अपील सं. 5051/2023 एवं 5052/2023 में इस न्यायालय द्वारा पारित दिनांक 21.08.2024 के निर्णय में, जिस पर प्रथम प्रतिवादी द्वारा भरोसा किया गया है, यह अवलोकन किया गया था कि बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों के लिए कट-ऑफ अंक निर्धारित न किया जाना मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं है। तथापि, यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि उपरोक्त सिविल अपीलों में तथ्यात्मक परिदृश्य भिन्न था, क्योंकि उस प्रकरण में बेंचमार्क दिव्यांगता वाले अभ्यर्थियों के लिए पृथक न्यूनतम अर्हक अंक निर्धारित नहीं किए गए थे। यह भी प्रस्तुत किया गया कि उपर्युक्त निर्णय के पश्चात्, इस न्यायालय की तीन-न्यायाधीशों की पीठ ने दिनांक 07.11.2024 को स्वतः संज्ञान रिट याचिका (नागरिक) संख्या 2 / 2024 में एक आदेश पारित किया है, जिसमें देशभर की जिला न्यायपालिका में अभ्यर्थियों के चयन के संचालन हेतु सामान्य दिशानिर्देश निर्धारित किए गए हैं। अतः, विद्वान अधिवक्ता ने प्रार्थना की कि इन रिट याचिकाओं में उचित आदेश पारित किए जाएं।

IV. उत्पन्न होने वाले विचारणीय मुद्दे_

29. अधिवक्ताओं द्वारा अपनी दलीलों और प्रस्तुतियों में जिन प्रश्नों का समाधान किया जाना आवश्यक है, उन्हें रेखांकित किया गया है। इन पर चर्चा और विश्लेषण करते समय, कुछ अतिव्यापी या प्रतिच्छेदी पहलू हो सकते हैं, जिससे सभी मुद्दों को सामूहिक रूप से संबोधित करना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। तथापि, स्पष्टता और संरचित समझ के लिए, निष्कर्षों को मुद्दा-वार बताया जाएगा।

29.1. निम्नलिखित मुद्दे वर्तमान मामलों में विचारार्थ उत्पन्न होते हैं:

- i. क्या दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा हेतु 'अनुपयुक्त' कहा जा सकता है?
- ii. क्या मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A में किया गया संशोधन संविधान के प्रतिकूल है?
- iii. क्या मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 7 की उपधारा संविधान में निहित समानता के सिद्धांत एवं युक्तियुक्त समायोजन (reasonable accommodation) के सिद्धांत का उल्लंघन करती है?

iv. क्या PwD अभ्यर्थियों की उपयुक्त संख्या उपलब्ध न होने की स्थिति में, उनके चयन के पश्चात उनकी उपयुक्तता के मूल्यांकन में छूट दी जा सकती है?

v. क्या दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के लिए पृथक कट-ऑफ निर्धारित किया जाना आवश्यक है और उसी के अनुरूप चयन प्रक्रिया आयोजित की जानी चाहिए?

V. विचार एवं विश्लेषण

30. सभी पक्षकारों की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता की दलीलें सुनी गईं और अभिलेखों का अवलोकन किया गया।

31. वर्तमान मामलों की श्रृंखला कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाती है, जो विकलांग व्यक्तियों अथवा PwD से संबंधित अधिकारों के व्यापक दायरे को स्पर्श करते हैं, जिन्हें विधि के अंतर्गत विशेष संरक्षण प्रदान किया गया है। विशेष रूप से, जिस मुख्य प्रश्न पर विचार किया जाना आवश्यक है, वह यह है कि दृष्टिबाधित व्यक्तियों, जिन्होंने विधि में डिग्री प्राप्त कर ली है, को न्यायिक अधिकारी के रूप में नियुक्त किए जाने की उपयुक्तता से संबंधित है; इसके अतिरिक्त, समानता के सिद्धांत के अनुप्रयोग एवं युक्तियुक्त समायोजन (reasonable accommodation) के सिद्धांत जैसे सहवर्ती सिद्धांतों की भी समीक्षा आवश्यक है, जिन्हें RPwD अधिनियम, 2016 में मान्यता प्रदान की गई है एवं विशेष रूप से उल्लेखित किया गया है। इस न्यायालय द्वारा जानबूझकर "उपयुक्तता (suitability)" शब्द का प्रयोग "पात्रता (eligibility)" के स्थान पर किया गया है, क्योंकि यह तथ्य है कि जब कोई व्यक्ति विधि में डिग्री पूर्ण कर लेता है एवं न्यायिक अधिकारी के रूप में नियुक्ति हेतु आवश्यक शैक्षणिक योग्यताएं अर्जित कर लेता है, तो वह उक्त पद के लिए पात्र (eligible) हो जाता है। किन्तु, जो प्रश्न वर्तमान में उठाया गया है, वह उन नियमों की वैधता से संबंधित है, जो उक्त पद के लिए अभ्यर्थियों की उपयुक्तता (suitability) को प्रभावित करते हैं। हमारे मत में, यह विषय विस्तृत चर्चा एवं निर्णय की अपेक्षा करता है ताकि भविष्य में उपयुक्तता से संबंधित ऐसे संदेह पुनः उत्पन्न न हों तथा इस विषय में वैधानिक नियमों को यथोचित रूप से विनियमित एवं परिभाषित किया जा सके।

32. अतः, इन मामलों का मूल विषय दो पक्षों में विभाजित है — एक ओर, वे नियम जिनके अंतर्गत दृष्टिबाधित व्यक्तियों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से न्यायिक सेवा की

चयन प्रक्रिया में भाग लेने से वंचित किया गया है, की वैधता; और दूसरी ओर, वे प्रकरण जिनमें दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को भाग लेने की अनुमति तो दी गई, परंतु उन्हें सिविल न्यायाधीश, कनिष्ठ श्रेणी (प्रवेश स्तर) के पद के लिए शारीरिक रूप से विकलांग कोटे के अंतर्गत अनारक्षित श्रेणी की रिक्तियों में चयनित नहीं किया गया।

A. वर्तमान संवैधानिक ढांचा एवं विकलांगता-आधारित भेदभाव के विरुद्ध अधिकार को मूल अधिकार के रूप में प्रतिष्ठित किए जाने की आवश्यकता

33. यदि कोई एक सिद्धांत है जो भारत के संविधान की नींव का अंग है, तो वह है 'समावेशन' (Inclusivity), जिस पर समानता का सिद्धांत भी आधारित है। यह सिद्धांत न केवल हमारे संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित आदर्शों में से एक है, बल्कि मौलिक अधिकारों के अध्याय के अंतर्गत अनुच्छेद 14, 15 एवं 16 में विशेष रूप से वर्णित है और संविधान की मूल संरचना का हिस्सा माना गया है। इसके अतिरिक्त, संविधान के अन्य प्रावधान — विशेषकर अनुच्छेद 14, 19 एवं 21 की स्वर्ण त्रयी (Golden Triangle) — जीवन के अधिकार के अंतर्गत आने वाले हर अधिकार को अपने भीतर समाहित करती है, जिसमें निःसंदेह और सबसे प्रमुख रूप से सम्मानपूर्वक जीवन जीने का अधिकार सम्मिलित है।

34. यद्यपि अनुच्छेद 15 में यह विशेष रूप से निहित है कि राज्य भारत के किसी भी नागरिक के साथ केवल धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान आदि के आधार पर भेदभाव नहीं करेगा, परंतु इसमें 'विकलांगता' (Disability) को एक पृथक आधार के रूप में स्पष्ट रूप से शामिल नहीं किया गया है। संविधान सभा की बहसों में अनुच्छेद 15 के भेदभाव-विरोधी प्रावधानों पर विस्तार से चर्चा की गई थी, फिर भी 'विकलांगता' को एक विशिष्ट आधार के रूप में शामिल नहीं किया गया। अनुच्छेद 15 में संशोधन कर 'विकलांगता' को एक भेदभाव-विरोधी आधार के रूप में सम्मिलित करना, लंबे समय से विकलांग अधिकार आंदोलन की मांग रही है। इस मांग को वर्ष 2019 में संयुक्त राष्ट्र विकलांग अधिकार समिति (UNCRPD Committee) ने भी भारत के संधि अनुपालन की समीक्षा के दौरान अपनी निष्कर्ष टिप्पणी में स्वीकार किया था। हालांकि अनुच्छेद 15 में एक मजबूत भेदभाव-विरोधी प्रावधान निहित है, परंतु इसमें अन्य आधारों का उल्लेख करते हुए 'विकलांगता' को छोड़ दिया गया है, जो कि विधायी प्रक्रिया में बाधा बन गया है। इसी कारण, इस दिशा में पहला अधिनियम था: "विकलांग व्यक्तियों का अधिकार अधिनियम, 1995 (Persons with Disabilities [Equal Opportunities, Protection of Rights and Full Participation] Act, 1995)"। इस अधिनियम की प्रस्तावना स्पष्ट करती है कि

यह अधिनियम 1 से 5 दिसंबर 1992 को बीजिंग में आयोजित "एशियन और पैसिफिक क्षेत्र के विकलांग व्यक्तियों की पूर्ण भागीदारी एवं समानता की उद्घोषणा" के अनुरूप पारित किया गया था, जो कि एशिया-प्रशांत विकलांग दशक (1993-2002) के शुभारंभ हेतु आयोजित बैठक में स्वीकृत की गई थी।

35. इसके पश्चात, वर्ष 2006 में संयुक्त राष्ट्र विकलांग अधिकार सम्मेलन (UNCRPD) को अंगीकृत किया गया, जिसका भारत हस्ताक्षरकर्ता है। इसके अनुपालन में, विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 (RPwD Act, 2016) संसद द्वारा पारित किया गया। यद्यपि यह सत्य है कि यह अधिनियम भारत की संधि दायित्वों की पूर्ति के रूप में संविधान के अनुच्छेद 253 के अंतर्गत पारित किया गया, परंतु यह तथ्य कि 'विकलांगता' को अनुच्छेद 15 में विशेष रूप से उल्लेखित नहीं किया गया, इस बात को नकारता नहीं है कि यह राज्य की संवैधानिक जिम्मेदारी का हिस्सा है। RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 32 और 34 यह स्पष्ट रूप से इंगित करती हैं कि जिस प्रकार राज्य को अनुच्छेद 15 और 16 के अंतर्गत सामाजिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े वर्गों को विशेष संरक्षण — शिक्षा एवं रोजगार में आरक्षण के रूप में — प्रदान करने का दायित्व है, उसी प्रकार राज्य ने PwD व्यक्तियों को भी समान संरक्षण एवं आरक्षण प्रदान करने का दायित्व स्वीकार किया है। इन तथ्यों के आलोक में यह कहा जा सकता है कि अब समय आ गया है कि संविधान में एक स्पष्ट भेदभाव-विरोधी प्रावधान जोड़ा जाए, जिसमें यह विशेषरूप से कहा जाए कि राज्य मानसिक या शारीरिक विकलांगता के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं करेगा, जैसा कि RPwD अधिनियम, 2016 में वर्णित सिद्धांतों के अनुरूप है। इस संदर्भ में यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि 189 देशों में से लगभग 70 देशों के संविधान में 'विकलांगता' को भेदभाव-विरोधी प्रावधानों में स्पष्ट रूप से शामिल किया गया है।

36. इस संदर्भ में यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 (RPwD Act, 2016) ने आज 'सुपर-स्टैच्यूट' (super-statute) का दर्जा प्राप्त कर लिया है। 'सुपर-स्टैच्यूट' शब्दावली का प्रयोग सर्वप्रथम 2001 में William N. Eskridge और John A. Ferejohn द्वारा उस सामान्य विधिक अधिनियम को परिभाषित करने हेतु किया गया था, जो न केवल विधायी मंशा को प्रकट करता है, बल्कि सार्वजनिक संस्कृति में एक नया मानदंडात्मक या संस्थागत ढांचा स्थापित करता है और जिसका कानून पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार, ऐसे अधिनियमों को अर्द्ध-संवैधानिक (quasi-constitutional) महत्व प्राप्त हो जाता है, जो उन्हें मात्र एक

अधिनियम के रूप में सीमित नहीं रहने देता। लेखकों के शब्दों में: “ ये सुपर-स्टैच्यूट सार्वजनिक मानदंडों एवं संस्थागत संस्कृति में गहराई से प्रविष्ट हो जाते हैं।” इस मानदंड को लागू करने पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि RPwD अधिनियम, 2016 ने एक ‘सुपर-स्टैच्यूट’ के समकक्ष दर्जा प्राप्त कर लिया है और इस प्रकार, इसमें एक अर्द्ध-संवैधानिक विधि के सभी तत्व निहित हैं।

B. अंतरराष्ट्रीय विकलांगता न्यायशास्त्र, दस्तावेज़ एवं प्रतिबद्धताएँ

37. अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार विधि में समानता दो पूरक सिद्धांतों पर आधारित होती है: अ- भेदभाव (Non-discrimination) युक्तियुक्तभिन्नकरण (Reasonable Differentiation) अ-भेदभाव का सिद्धांत यह सुनिश्चित करता है कि सभी व्यक्ति समान रूप से अपने अधिकारों और स्वतंत्रताओं का उपभोग और प्रयोग कर सकें। भेदभाव तब उत्पन्न होता है जब समान भागीदारी के अवसरों से मनमाने ढंग से वंचित किया जाता है। उदाहरणस्वरूप: जब सार्वजनिक सुविधाएँ और सेवाएँ PwD व्यक्तियों की पहुँच से बाहर की मानकों पर आधारित होती हैं, तो यह बहिष्करण और अधिकारों के हनन का कारण बनती है। समानता का अर्थ केवल भेदभाव को रोकना नहीं है (जैसे, प्रतिकूल व्यवहार के विरुद्ध व्यक्तियों की रक्षा हेतु भेदभाव-विरोधी कानूनों की स्थापना), बल्कि इससे आगे बढ़कर उन सामाजिक समूहों के प्रति सकारात्मक उपाय करना है, जो लंबे समय से संगठित भेदभाव का सामना कर रहे हैं। वास्तविक रूप से इसका अर्थ है: सकारात्मक अधिकारों (positive rights) की मान्यता, सकारात्मक कार्यवाई (affirmative action), तथा युक्तियुक्त समायोजन (reasonable accommodation)। विकलांग व्यक्तियों के प्रति पूर्ववर्ती ‘चिकित्सकीय मॉडल’ आधारित संरक्षक और पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से हटकर उन्हें समाज के पूर्ण अधिकारयुक्त सदस्य के रूप में देखने की प्रवृत्ति, न केवल अंतरराष्ट्रीय मानकों में परिलक्षित होती है, बल्कि इसे PwD के अधिकारों को सार्वभौमिक मानवाधिकारों की श्रेणी में सम्मिलित करने के प्रयासों में भी देखा जा सकता है।

38. यह उपयुक्त होगा कि संयुक्त राष्ट्र विकलांग अधिकार सम्मेलन, 2007 में निहित कुछ महत्वपूर्ण प्रावधानों को उद्धृत किया जाए, जिसके अधीन सभी सदस्य राष्ट्र एवं हस्ताक्षरकर्ता — जिनमें भारत भी सम्मिलित है — बाध्य हैं, और वे इस प्रकार हैं:

प्रस्तावना (PREAMBLE)

(b) यह स्वीकार करते हुए कि संयुक्त राष्ट्र ने, सार्वभौमिक मानवाधिकारों की उद्घोषणा तथा अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधियों में यह घोषित एवं स्वीकार किया है कि प्रत्येक व्यक्ति को, बिना किसी भेदभाव के, उन सभी अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं का उपभोग करने का अधिकार है, जो इन दस्तावेजों में उल्लिखित हैं।

(c) यह पुनः पुष्टि करते हुए कि सभी मानवाधिकार एवं मौलिक स्वतंत्रताएँ सार्वभौमिक, अविभाज्य, परस्पर-निर्भर और अंतःसंबंधित हैं, और यह कि विकलांग व्यक्तियों को बिना किसी भेदभाव के इन अधिकारों का पूर्ण उपभोग सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है।

अनुच्छेद 1 – उद्देश्य (ARTICLE 1 - PURPOSE)

"इस सम्मेलन का उद्देश्य है कि सभी विकलांग व्यक्तियों को मानवाधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं का पूर्ण एवं समान रूप से उपभोग करने, उनके संरक्षण एवं प्रवर्तन को सुनिश्चित करना, तथा उनकी अंतर्निहित गरिमा (*inherent dignity*) के प्रति सम्मान को बढ़ावा देना।

‘विकलांग व्यक्ति’ उनमें सम्मिलित हैं जो दीर्घकालिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी बाधाओं से ग्रस्त हैं, और जो विभिन्न बाधाओं के साथ अंतःक्रिया में, समाज में अन्य व्यक्तियों के समान रूप से पूर्ण एवं प्रभावी भागीदारी में अवरोध उत्पन्न कर सकती हैं।”

अनुच्छेद 5 – समानता और अ-भेदभाव (ARTICLE 5 – EQUALITY AND NON-DISCRIMINATION)

राज्य पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि सभी व्यक्ति कानून के समक्ष एवं कानून के अधीन समान हैं, और उन्हें बिना किसी भेदभाव के, कानून की समान सुरक्षा एवं समान लाभ प्राप्त करने का अधिकार है।

राज्य पक्ष विकलांगता के आधार पर सभी प्रकार के भेदभाव को निषिद्ध करेंगे, तथा विकलांग व्यक्तियों को सभी आधारों पर समान और प्रभावी कानूनी संरक्षण प्रदान करेंगे।

समानता को बढ़ावा देने एवं भेदभाव समाप्त करने हेतु, राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करने के लिए उचित कदम उठाएँगे कि युक्तियुक्त समायोजन (*reasonable accommodation*) प्रदान किया जाए।

अनुच्छेद 9 – अभिगम्यता (ARTICLE 9 – ACCESSIBILITY)

विकलांग व्यक्तियों को स्वतंत्र रूप से जीवनयापन एवं जीवन के सभी पहलुओं में पूर्ण रूप से भाग लेने में सक्षम बनाने हेतु, राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करने के लिए उचित उपाय करेंगे कि उन्हें भौतिक वातावरण, परिवहन, सूचना एवं संप्रेषण, तथा अन्य सार्वजनिक सुविधाओं एवं सेवाओं तक अन्य व्यक्तियों के समान पहुंच प्राप्त हो, चाहे वह शहरी हो या ग्रामीण क्षेत्र।

अनुच्छेद 13 – न्याय तक पहुंच (ARTICLE 13 – ACCESS TO JUSTICE)

राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करेंगे कि विकलांग व्यक्तियों को न्याय तक प्रभावी पहुंच, अन्य व्यक्तियों के समान आधार पर प्राप्त हो, जिसमें प्रक्रियात्मक एवं आयु के अनुरूप समायोजन (*procedural and age-appropriate accommodations*) की व्यवस्था भी सम्मिलित हो, जिससे वे सभी विधिक कार्यवाहियों में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष भागीदारों — जैसे कि गवाहों — के रूप में प्रभावी भूमिका निभा सकें, जिसमें जांच और प्रारंभिक चरण भी सम्मिलित हैं।

अनुच्छेद 14 – व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं सुरक्षा (ARTICLE 14 – LIBERTY AND SECURITY OF THE PERSON)

राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करेंगे कि विकलांग व्यक्ति, अन्य व्यक्तियों के समान आधार पर:

(a) व्यक्ति की स्वतंत्रता और सुरक्षा के अधिकार का उपभोग करें;

(b) उन्हें अवैध या मनमाने ढंग से स्वतंत्रता से वंचित न किया जाए, और यह कि विकलांगता का अस्तित्व किसी भी स्थिति में स्वतंत्रता से वंचित किए जाने का औचित्य नहीं ठहरा सकता।

अनुच्छेद 21 – अभिव्यक्ति और राय की स्वतंत्रता तथा सूचना तक पहुंच (ARTICLE 21 – FREEDOM OF EXPRESSION AND OPINION, AND ACCESS TO INFORMATION)

राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करने हेतु सभी उपयुक्त उपाय करेंगे कि विकलांग व्यक्ति अभिव्यक्ति एवं राय की स्वतंत्रता का उपभोग कर सकें, जिसमें यह भी सम्मिलित है कि वे जानकारी और विचारों को प्राप्त करें, खोजें, और साझा करें, और वह भी अपनी पसंद के सभी संचार माध्यमों के माध्यम से, अन्य व्यक्तियों के समान आधार पर।

अनुच्छेद 24 – शिक्षा (ARTICLE 24 – EDUCATION)

राज्य पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि विकलांग व्यक्तियों को शिक्षा का अधिकार है। इस अधिकार को बिना भेदभाव और समान अवसरों के आधार पर प्राप्त कराने हेतु, राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करेंगे कि सभी स्तरों पर समावेशी शिक्षा प्रणाली एवं जीवन भर के लिए अधिगम व्यवस्था सुलभ हो।

अनुच्छेद 27 – कार्य एवं रोजगार (ARTICLE 27 – WORK AND EMPLOYMENT)

वास्तविक समानता (*de facto equality*) प्राप्त करने हेतु, राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करेंगे कि रोजगार और कार्यक्षेत्र से संबंधित किसी भी क्षेत्र में विकलांगता के आधार पर भेदभाव न किया जाए।

युक्तियुक्त समायोजन (Article 5(3)) प्रदान करने तथा कार्यस्थल में वास्तविक समानता प्राप्त करने (Article 5(4)) के लिए राज्य पक्ष को चाहिए कि:

(a) वे विकलांग व्यक्तियों के लिए पृथक कार्य वातावरण (*segregated work environments*) से खुले श्रम बाजार की ओर स्थानांतरण को प्रोत्साहित करें, तथा साथ ही यह भी सुनिश्चित करें कि श्रम अधिकारों की त्वरित लागू-योग्यता उन कार्यस्थलों पर भी सुनिश्चित की जाए।

(b) समर्थित रोजगार के अधिकार को बढ़ावा देना, जिसमें कार्य सहायता, नौकरी कोचिंग तथा व्यावसायिक योग्यता कार्यक्रम सम्मिलित हों; विकलांग श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करना; और यह सुनिश्चित करना कि उन्हें स्वतंत्र रूप से चुने गए रोजगार का अधिकार प्राप्त हो।

(c) यह सुनिश्चित करना कि विकलांग व्यक्तियों को न्यूनतम वेतन से कम भुगतान न किया जाए और यह कि रोजगार आरंभ करने पर वे विकलांगता भत्ते से वंचित न हों।

(d) यह स्पष्ट रूप से मान्यता देना कि युक्तियुक्त समायोजन (*reasonable accommodation*) से वंचित करना एक प्रकार का भेदभाव है, तथा बहुस्तरीय (*multiple*) और अंतःसंबंधी (*intersectional*) भेदभाव और उत्पीड़न को निषिद्ध करना।

(e) विकलांग व्यक्तियों के लिए रोजगार में प्रवेश और निर्गमन की प्रक्रिया को गैर-भेदभावपूर्ण रूप में सुनिश्चित करना। राज्य पक्ष यह सुनिश्चित करने के लिए बाध्य है कि सेवानिवृत्ति अथवा बेरोजगारी लाभों जैसे अधिकारों एवं लाभों तक समान और प्रभावी पहुंच सुनिश्चित की जाए। ऐसे लाभ रोजगार से बहिष्करण के कारण छीन नहीं लिए जाने चाहिए, जिससे बहिष्करण की स्थिति और अधिक विकट हो।

(f) समावेशी, सुलभ, सुरक्षित और स्वस्थ कार्य वातावरण में कार्य को बढ़ावा देना — चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र में हो या निजी क्षेत्र में।

(g) यह सुनिश्चित करना कि विकलांग व्यक्तियों को पदोन्नति के अवसरों में समान अवसर मिले, जिसके लिए उनके प्रबंधकों के साथ नियमित मूल्यांकन बैठकें आयोजित की जाएं और उद्देश्यों को परिभाषित किया जाए — यह समग्र रणनीति का एक भाग हो।

(h) यह सुनिश्चित करना कि विकलांग कर्मचारियों को प्रशिक्षण, पुनःप्रशिक्षण और शिक्षा तक पहुंच प्राप्त हो, जिसमें व्यावसायिक प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण सम्मिलित हो; और साथ ही नियोक्ताओं, कर्मचारी संगठनों, यूनियनों और सक्षम प्राधिकारियों को विकलांग व्यक्तियों के रोजगार और युक्तियुक्त समायोजन पर प्रशिक्षण प्रदान किया जाए।

(i) विकलांग व्यक्तियों के लिए सार्वभौमिक रूप से लागू व्यावसायिक स्वास्थ्य एवं सुरक्षा उपायों की दिशा में कार्य करना, जिसमें गैर-भेदभावकारी और समावेशी नियमावली सम्मिलित हो।

(j) विकलांग व्यक्तियों के व्यापार और श्रम संघों तक पहुंच के अधिकार को मान्यता देना।

अनुच्छेद 30 – सांस्कृतिक जीवन, मनोरंजन, अवकाश एवं खेलों में भागीदारी

राज्य पक्ष यह स्वीकार करते हैं कि विकलांग व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों के समान आधार पर सांस्कृतिक जीवन में भाग लेने का अधिकार है, और वे यह सुनिश्चित करने हेतु सभी उपयुक्त उपाय करेंगे कि उन्हें सुलभ प्रारूपों में सांस्कृतिक सामग्री तक पहुंच प्राप्त हो।

अनुच्छेद 32 – अंतरराष्ट्रीय सहयोग

1. राज्य पक्ष अंतरराष्ट्रीय सहयोग के महत्व और इसके प्रोत्साहन को स्वीकार करते हैं — ताकि इस सम्मेलन के उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु राष्ट्रीय प्रयासों का समर्थन किया जा सके — और इस हेतु वे आपसी तथा अन्य देशों के साथ, और उपयुक्त होने पर प्रासंगिक अंतरराष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय संगठनों और नागरिक समाज, विशेषकर विकलांग व्यक्तियों के संगठनों के साथ साझेदारी में उपयुक्त और प्रभावी उपाय अपनाएँगे। इन उपायों में, अन्य बातों के अलावा, निम्नलिखित सम्मिलित हो सकते हैं:

(a) यह सुनिश्चित करना कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग, जिसमें अंतरराष्ट्रीय विकास कार्यक्रम सम्मिलित हैं, विकलांग व्यक्तियों के लिए समावेशी और सुलभ हो;

(b) जानकारी, अनुभव, प्रशिक्षण कार्यक्रमों और श्रेष्ठ प्रथाओं के अदला-बदली और साझाकरण के माध्यम से क्षमता निर्माण को सुविधाजनक बनाना और उसका समर्थन करना;

(c) अनुसंधान में सहयोग और वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान तक पहुंच को सुविधाजनक बनाना;

(d) आवश्यकता अनुसार, तकनीकी और आर्थिक सहायता प्रदान करना, जिसमें सुलभ और सहायक प्रौद्योगिकियों तक पहुंच और उनका साझाकरण एवं प्रौद्योगिकी का अंतरण (technology transfer) भी सम्मिलित हो।

अतः, यह सम्मेलन इस उद्देश्य के साथ लाया गया है कि सभी विकलांग व्यक्तियों को उनके सभी मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का पूर्ण और समान रूप से उपभोग प्राप्त हो सके। यह सम्मेलन उनकी अंतर्निहित गरिमा के प्रति सम्मान को भी बढ़ावा देने का उद्देश्य रखता है, और यह भेदभाव-विरोधी विधियों के अंतर्गत प्राप्त नागरिक एवं राजनीतिक अधिकारों को सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक उपायों की एक विस्तृत श्रृंखला के साथ समानता की गारंटी को साकार करने के लिए एकीकृत करता है।

C. विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 – प्रावधान एवं गारंटी

39. RPwD अधिनियम, 2016 का उद्देश्य संविधान द्वारा विकलांग व्यक्तियों को प्रदान की गई पूर्ण एवं समान नागरिकता के वादे को सक्रिय रूप देना तथा समावेश और स्वीकृति के उसके आदर्शों को लागू करना है। इस अधिनियम के प्रमुख प्रावधान निम्नलिखित हैं:

धारा 2

(c) “बाधा (*barrier*)” का तात्पर्य ऐसे किसी भी कारक से है — जिसमें संचार, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय, संस्थागत, राजनीतिक, सामाजिक, दृष्टिकोणात्मक या संरचनात्मक कारक सम्मिलित हैं — जो विकलांग व्यक्तियों की समाज में पूर्ण एवं प्रभावी भागीदारी में अवरोध उत्पन्न करता है।

(h) “विकलांगता के संदर्भ में भेदभाव (*discrimination*)” का अर्थ है — विकलांगता के आधार पर किया गया कोई भी भेद, बहिष्करण या प्रतिबंध, जिसका उद्देश्य या प्रभाव यह हो कि किसी व्यक्ति को समान आधार पर राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, नागरिक या किसी अन्य क्षेत्र में सभी मानवाधिकारों एवं मौलिक स्वतंत्रताओं की मान्यता, उपभोग या प्रयोग से वंचित कर दिया जाए; इसमें सभी प्रकार का भेदभाव तथा युक्तियुक्त समायोजन से इनकार सम्मिलित है।

(l) “उच्च समर्थन (*high support*)” का तात्पर्य है — ऐसा गहन शारीरिक, मानसिक, या अन्य प्रकार का समर्थन, जो दैनिक कार्यों, स्वतंत्र एवं सूचित निर्णय लेने, सुविधाओं तक पहुंच प्राप्त करने, तथा शिक्षा, रोजगार, पारिवारिक और सामुदायिक जीवन एवं उपचार व चिकित्सा में भागीदारी हेतु बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्ति द्वारा आवश्यक हो सकता है।

(r) “बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्ति” वह व्यक्ति है, जिसमें निर्दिष्ट विकलांगता का कम से कम चालीस प्रतिशत पाया गया हो (जहां निर्दिष्ट विकलांगता मात्रात्मक रूप से परिभाषित नहीं की गई हो), तथा जहां निर्दिष्ट विकलांगता मात्रात्मक रूप में परिभाषित है, वहां प्रमाणन प्राधिकरण द्वारा प्रमाणित किया गया व्यक्ति।

(s) “विकलांग व्यक्ति” वह है, जिसे दीर्घकालिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी क्षति है, जो विभिन्न बाधाओं के साथ परस्पर क्रिया करते हुए, व्यक्ति की समाज में अन्य के समान पूर्ण और प्रभावी भागीदारी में अवरोध उत्पन्न करती है।

(v) “युक्तियुक्त समायोजन (*reasonable accommodation*)” का तात्पर्य है — ऐसा आवश्यक और उपयुक्त संशोधन एवं समायोजन, जो किसी विशेष मामले में अनुपातहीन या अनुचित भार डाले बिना किया जाए, ताकि विकलांग व्यक्ति समान रूप से अधिकारों का उपभोग अथवा प्रयोग कर सके।

धारा 3 – समानता एवं अ-भेदभाव

(1) उपयुक्त सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि विकलांग व्यक्ति समानता, गरिमा से युक्त जीवन, तथा उनकी अखंडता के प्रति सम्मान का अधिकार अन्य व्यक्तियों के समान उपभोग करें।

(2) उपयुक्त सरकार विकलांग व्यक्तियों की क्षमता का उपयोग करने के लिए उन्हें उपयुक्त वातावरण उपलब्ध कराने हेतु कदम उठाएगी।

धारा 5 – सामुदायिक जीवन

(1) विकलांग व्यक्तियों को समाज में रहने का अधिकार प्राप्त होगा।

धारा 6 – क्रूरता एवं अमानवीय व्यवहार से संरक्षण

(1) उपयुक्त सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि विकलांग व्यक्ति यातना, क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के अधीन न किए जाएं।

धारा 12 – न्याय तक पहुंच

(1) उपयुक्त सरकार यह सुनिश्चित करेगी कि विकलांग व्यक्ति बिना किसी भेदभाव के किसी भी न्यायालय, प्राधिकरण, आयोग या किसी अन्य न्यायिक, अर्ध-न्यायिक या जांच प्राधिकरण तक पहुंच प्राप्त कर सकें।

धारा 16 – शैक्षणिक संस्थानों का कर्तव्य

उपयुक्त सरकार एवं स्थानीय प्राधिकरण यह सुनिश्चित करेंगे कि उनके द्वारा वित्तपोषित या मान्यता प्राप्त सभी शैक्षणिक संस्थान विकलांग बच्चों को समावेशी शिक्षा प्रदान करें, और इसके लिए वे:

- उन्हें बिना भेदभाव के प्रवेश प्रदान करें,
 - शिक्षा, खेल एवं मनोरंजन की समान अवसरों तक पहुंच उपलब्ध कराएं।
-

धारा 17 – समावेशी शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विशिष्ट उपाय

उपयुक्त सरकार एवं स्थानीय प्राधिकरण धारा 16 के प्रयोजन हेतु निम्नलिखित उपाय करेंगे:

- (a) प्रत्येक पांच वर्ष में विद्यालय जाने वाले बच्चों का सर्वेक्षण कर विकलांग बच्चों की पहचान, उनकी विशेष आवश्यकताओं एवं उनकी पूर्ति की स्थिति को निर्धारित करना;
- (b) पर्याप्त संख्या में शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करना;
- (c) संकेत भाषा और ब्रेल में दक्ष, तथा बौद्धिक विकलांग बच्चों को पढ़ाने में प्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित एवं नियुक्त करना;
- (d) स्कूल स्तर पर समावेशी शिक्षा हेतु पेशेवरों एवं स्टाफ को प्रशिक्षित करना;
- (e) सभी स्तरों पर शैक्षणिक संस्थानों को सहयोग देने हेतु संसाधन केंद्रों की स्थापना करना;
- (f) ब्रेल, संकेत भाषा एवं अन्य वैकल्पिक संचार माध्यमों के उपयोग को बढ़ावा देना;
- (g) बेंचमार्क विकलांगता वाले छात्रों को 18 वर्ष की आयु तक निःशुल्क पुस्तकें, शिक्षण सामग्री एवं सहायक उपकरण प्रदान करना;
- (h) उपयुक्त मामलों में छात्रवृत्ति प्रदान करना;
- (i) पाठ्यक्रम एवं परीक्षा प्रणाली में आवश्यक संशोधन करना, जैसे –
 - प्रश्नपत्र हल करने हेतु अतिरिक्त समय,
 - स्क्राइब या अमनुएन्सिस की सुविधा,
 - द्वितीय एवं तृतीय भाषा पाठ्यक्रम से छूट;
- (j) शिक्षण विधियों के सुधार हेतु अनुसंधान को बढ़ावा देना;
- (k) अन्य कोई भी उपाय, जो आवश्यक हो।

धारा 20 – रोजगार में भेदभाव निषेध

(1) कोई भी सरकारी प्रतिष्ठान किसी विकलांग व्यक्ति के विरुद्ध रोजगार से संबंधित किसी भी मामले में भेदभाव नहीं करेगा।

(2) प्रत्येक सरकारी प्रतिष्ठान विकलांग कर्मचारियों के लिए युक्तियुक्त समायोजन (*reasonable accommodation*) और उपयुक्त, बाधारहित एवं अनुकूल कार्य परिवेश उपलब्ध कराएगा।

(3) केवल विकलांगता के आधार पर किसी व्यक्ति को पदोन्नति से वंचित नहीं किया जाएगा।

धारा 21 – समान अवसर नीति

(1) प्रत्येक प्रतिष्ठान समान अवसर नीति (*Equal Opportunity Policy*) अधिसूचित करेगा, जिसमें इस अध्याय के प्रावधानों के अनुसरण में की जाने वाली प्रस्तावित कार्रवाइयों का विवरण होगा — जैसा कि केंद्र सरकार द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए।

(2) प्रत्येक प्रतिष्ठान इस नीति की प्रति को प्रमुख आयुक्त या राज्य आयुक्त, जो भी लागू हो, के पास पंजीकृत कराएगा।

धारा 24 – सामाजिक सुरक्षा

(1) उपयुक्त सरकार अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमा में रहते हुए, विकलांग व्यक्तियों के लिए पर्याप्त जीवन स्तर सुनिश्चित करने तथा उन्हें स्वतंत्र रूप से या समुदाय में रहने योग्य बनाने के लिए आवश्यक योजनाएँ और कार्यक्रम तैयार करेगी।

धारा 32 – उच्च शिक्षण संस्थानों में आरक्षण

(1) सभी सरकारी उच्च शिक्षण संस्थान और वे अन्य उच्च शिक्षण संस्थान जो सरकार से सहायता प्राप्त करते हैं, बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्तियों के लिए कम से कम पाँच प्रतिशत सीटों का आरक्षण सुनिश्चित करेंगे।

(2) बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्तियों को उच्च शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए अधिकतम आयु सीमा में पाँच वर्ष की छूट प्रदान की जाएगी।

धारा 33 – आरक्षण हेतु पदों की पहचान

उपयुक्त सरकार निम्नलिखित कार्य करेगी:

- (i) उन पदों की पहचान करना जो विभिन्न बेंचमार्क विकलांगता श्रेणियों के व्यक्तियों द्वारा धारण किए जा सकते हैं, जैसा कि धारा 34 के अंतर्गत आरक्षित रिक्तियों में निर्धारित है;
 - (ii) बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व रखने वाली एक विशेषज्ञ समिति का गठन करना, जो ऐसे पदों की पहचान करे;
 - (iii) पहचान किए गए पदों की समय-समय पर समीक्षा करना, जिसकी अवधि तीन वर्ष से अधिक नहीं हो।
-

धारा 34 – आरक्षण

(1) प्रत्येक उपयुक्त सरकार प्रत्येक सरकारी प्रतिष्ठान में, कुल रिक्तियों के पदसंख्या (*cadre strength*) में कम से कम चार प्रतिशत पदों पर बेंचमार्क विकलांगता से युक्त व्यक्तियों की नियुक्ति सुनिश्चित करेगी, जिसमें से:

- एक-एक प्रतिशत आरक्षण निम्नलिखित श्रेणियों के लिए होगा:
 - (a) दृष्टिहीनता एवं अल्पदृष्टि (*Blindness and Low Vision*)
 - (b) मूक एवं श्रवण बाधित (*Deaf and Hard of Hearing*)
 - (c) गतिशीलता से संबंधित विकलांगता (*Locomotor Disability*) जिसमें सेरेब्रल पाल्सी, कुछ मुक्त, बौनेपन, एसिड अटैक पीड़ित एवं मांसपेशीय अपविकास (*Muscular Dystrophy*) सम्मिलित हैं;
 - शेष एक प्रतिशत आरक्षण निम्नलिखित के लिए होगा:
 - (d) आत्मकेंद्रित, बौद्धिक विकलांगता, विशिष्ट अध्ययन विकलांगता और मानसिक रोग;
 - (e) उपरोक्त (a) से (d) तक की श्रेणियों में से दो या अधिक विकलांगता से ग्रस्त व्यक्ति, जिसमें बधिर-दृष्टिहीनता (*Deaf-blindness*) भी सम्मिलित है, उन पदों के लिए जिन्हें प्रत्येक विकलांगता के लिए चिन्हित किया गया हो।
-

जैसा कि देखा जा सकता है, विकलांग व्यक्ति अधिकार अधिनियम, 2016 (RPwD Act, 2016) विकलांग व्यक्तियों (PwDs) के अधिकारों का विस्तार करके और विकलांगताओं की मान्यता प्राप्त श्रेणियों को व्यापक बनाकर एक महत्वपूर्ण विधायी बदलाव को चिह्नित करता है। यह समानता और गैर-भेदभाव सुनिश्चित करता है, उचित समायोजन अनिवार्य करता है, और सामुदायिक जीवन, शिक्षा, रोजगार तथा न्याय तक पहुंच में बाधाओं को प्रतिबंधित करता है। यह सामाजिक सुरक्षा उपायों, समावेशी शिक्षा, उच्च शिक्षा और रोजगार में आरक्षण, तथा क्रूरता और शोषण से सुरक्षा का भी प्रावधान करता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि यह इस संबंध में राज्य और अन्य हितधारकों पर स्पष्ट जिम्मेदारियां अधिरोपित करता है।

D. न्यायिक दृष्टिकोण - अब तक की प्रगति

40. इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय यह दर्शाते हैं कि न्यायिक स्तर पर अब तक क्या प्रगति हुई है, विशेष रूप से युक्तियुक्त समायोजन (reasonable accommodation) की अवधारणा को स्पष्ट करने के संदर्भ में:

(i) Union of India & Others बनाम National Federation of Blind & Others, [(2013) 10 SCC 772] में, इस न्यायालय ने मान्यता दी कि रोजगार के अवसर PwD व्यक्तियों के सशक्तिकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

न्यायमूर्ति पी. सथासिवम (तत्कालीन) ने यह अवलोकन किया:

“50. रोजगार विकलांग व्यक्तियों के सशक्तिकरण और समावेशन का एक प्रमुख कारक है। यह चिंताजनक यथार्थ है कि विकलांग लोग नौकरी से बाहर इसलिए नहीं हैं कि उनकी विकलांगता उनके कार्य

निष्पादन में बाधक है, बल्कि यह सामाजिक और व्यावहारिक बाधाएं हैं जो उन्हें कार्यबल से जुड़ने से रोकती हैं। इसके परिणामस्वरूप, अनेक विकलांग लोग गरीबी और दयनीय परिस्थितियों में जीवन यापन करते हैं। उन्हें न केवल अपने जीवन, बल्कि अपने परिवार और समुदाय के जीवन में सार्थक योगदान देने का अधिकार भी छीन लिया जाता है।“

(ii)जीजा घोष बनाम भारत संघ [(2016) 7 SCC 761] में, इस न्यायालय ने कहा कि समानता का एक प्रमुख घटक है युक्तियुक्त भेद (reasonable differentiation) और PwD व्यक्तियों की भिन्न आवश्यकताओं को पहचानते हुए विशिष्ट उपाय अपनाए जाने चाहिए ताकि वास्तविक समानता (substantive equality) प्राप्त की जा सके

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने कहा:

40. अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार कानून में समानता दो परस्पर पूरक सिद्धांतों पर आधारित है: भेदभाव निषेध और युक्तियुक्त भेद। भेदभाव निषेध का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि सभी व्यक्ति समान रूप से अपने सभी अधिकारों और स्वतंत्रताओं का आनंद ले सकें। जब सार्वजनिक सुविधाएं और सेवाएं ऐसे मानकों पर आधारित होती हैं जो PwD व्यक्तियों की पहुँच से बाहर होती हैं, तो यह उनके अधिकारों की अस्वीकृति और बहिष्करण की स्थिति उत्पन्न करता है। समानता केवल भेदभाव को रोकने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उस प्रणालीगत भेदभाव को दूर करने तक जाती है जो समाज में कुछ वर्गों को सतत रूप से प्रभावित करता है। इसका अर्थ है: सकारात्मक अधिकारों, सकारात्मक कार्रवाई और युक्तियुक्त समायोजन को स्वीकार करना।“

(iii) विकास कुमार बनाम भारत संघ [(2021) 5 SCC 370] में न्यायालय ने यह महत्वपूर्ण बात कही:

“35. युक्तियुक्त समायोजन का सिद्धांत राज्य और निजी पक्षों पर यह सकारात्मक दायित्व आरोपित करता है कि वे विकलांग व्यक्तियों को समाज में उनकी पूर्ण और प्रभावी भागीदारी सुनिश्चित कराने हेतु अतिरिक्त समर्थन प्रदान करें। युक्तियुक्त समायोजन की संकल्पना नीचे अनुभाग (H) में विस्तृत रूप से विकसित की गई है। फिलहाल इतना कहना पर्याप्त होगा कि यदि विकलांग व्यक्ति को यह अतिरिक्त सहयोग न मिले, तो संविधान द्वारा प्रदत्त समानता का अधिकार, छह स्वतंत्रताएँ और अनुच्छेद 21 के अंतर्गत जीवन का अधिकार केवल औपचारिक (खोखला) बनकर रह जाएगा। युक्तियुक्त समायोजन ही वह साधन है — और समाज के रूप में हम सबकी सामूहिक जिम्मेदारी — जिसके माध्यम से विकलांग व्यक्ति संविधान में प्रदत्त समानता और भेदभाव निषेध की गारंटी का वास्तविक लाभ उठा सकें।“

“44. युक्तियुक्त समायोजन का सिद्धांत — व्यक्तिगत गरिमा ही RPwD अधिनियम, 2016 की आधारशिला है। इस गरिमा की वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए आवश्यक है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को

समान सदस्य के रूप में मूल्य और सम्मान मिले।अन्यों की गरिमा का सम्मान करना और ऐसी परिस्थितियाँ विकसित करना जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के अनुसार आगे बढ़ सके — यही एक ऐसे कानूनी व्यवस्था के मूल तत्व हैं जो व्यक्तिगत स्वायत्तता को संरक्षित, सम्मानित और प्रोत्साहित करती हैं।

ऐसी परिस्थितियाँ जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमताओं के अनुसार विकसित हो सके — किसी विधिक व्यवस्था के मूल तत्व होते हैं जो व्यक्तिगत स्वायत्तता की रक्षा, सम्मान और सहायता करती हैं।RPWD अधिनियम, 2016, इन मूल्यों को विकलांग व्यक्तियों के अविच्छिन्न अधिकारों के रूप में प्रक्षेपित करने के प्रयास में, केवल एक भेदभाव निषेध चार्टर नहीं रह जाता, बल्कि उससे कहीं आगे चला जाता है। यह अधिनियम न केवल विकलांग व्यक्तियों के प्रति भेदभाव को रोकने हेतु सीमाएँ निर्धारित करता है, बल्कि राज्य पर एक सकारात्मक दायित्व भी आरोपित करता है, ताकि इन अधिकारों को मूर्त रूप दिया जा सके। यह अधिनियम राज्य को यह अनिवार्य करता है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित करे, जिनमें विकलांगता के कारण उत्पन्न अवरोधों को दूर किया जा सके। ऐसा उपयुक्त वातावरणनिर्मित करना, जिसमें विकलांग व्यक्ति मानव स्वतंत्रता के अंतर्गत आने वाले समस्त अधिकारों का पूर्ण उपयोग कर सके, यह विधिक रूप से प्रवर्तनीय (*enforceable at law*) है।वास्तविक समानता (*substantive equality*) पर बल देते हुए इस अधिनियम का निर्माण विकलांगों को समान अवसर की गारंटी देने हेतु कानूनी नींव प्रदान करने वाला एक ऐतिहासिक कदम (*watershed event*) है।

45. युक्तियुक्त समायोजन का सिद्धांत यह स्वीकार करता है कि यदि विकलांगता को एक सामाजिक संरचना (*social construct*) के रूप में देखा जाए, तो उसका समाधान तभी संभव है जब विकलांगों के विकास हेतु सकारात्मक रूप से अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित की जाएँ।युक्तियुक्त समायोजन की नींव समावेशन (*inclusion*) की भावना में निहित है। बहिष्करण, व्यक्ति की गरिमा और आत्म-मूल्य का अपमान है, जबकि युक्तियुक्त समायोजन का मार्ग वह है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की गरिमा और मूल्य का सम्मान किया जाता है।इस मार्ग में, “सशक्त और बहुसंख्यक वर्ग अपने नियमों और प्रथाओं को, तर्कसंगत सीमाओं में रहते हुए और अत्यधिक कठिनाई के बिना, इस प्रकार अनुकूलित करते हैं कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति संभव हो सके।”

46. समायोजन का तात्पर्य यह है कि राज्य तथा समाज को यह सकारात्मक दायित्व निभाना होगा कि विकलांगों की वृद्धि और आत्म-पूर्ति के लिए सभी जीवन क्षेत्रों में —चाहे वे छात्र हों,कार्यस्थल के सदस्य,शासन व्यवस्था में भागीदार,या व्यक्तिगत जीवन में पारिवारिक अधिकारों के उपभोगकर्ता उनके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित की जाएँ।कानून द्वारा निर्देशित यह समायोजन ‘युक्तियुक्त’ (*reasonable*) इसीलिए कहा गया है क्योंकि इसे प्रत्येक विकलांगता की प्रकृति एवं उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न बाधाओं के अनुरूप अनुकूलित किया जाना आवश्यक है।हर विकलांग व्यक्ति की अपेक्षाएँ उसकी विशिष्ट विकलांगता एवं उसकी परिस्थिति के अनुसार भिन्न होती हैं, और यह समायोजन उसी के अनुसार किया जाना चाहिए।

49. यह सिद्धांत उन वर्गों की आवश्यकताओं की पूर्ति का उद्देश्य लेकर चलता है जो किसी विशेष प्रकार की विकलांगता का सामना कर रहे हैं। इस वर्ग विशेष की आवश्यकताओं से आगे बढ़कर, इस वर्ग में शामिल प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकता को भी संबोधित किया जाना चाहिए। युक्तियुक्त समायोजन का सिद्धांत यह भी स्वीकार करता है कि विकलांगता आधारित भेदभाव 'इंटरसेक्शनल' (intersectional) होता है। यह इंटरसेक्शनल विशेषताएँ विशेष संदर्भों में उत्पन्न होती हैं, जैसे: एकाधिक विकलांगताओं की उपस्थिति, और उनके परिणामस्वरूप उत्पन्न बहुविध प्रभाव। इसलिए, विकलांगता को केवल एक-आयामी (unidimensional) रूप में नहीं समझा जा सकता। युक्तियुक्त समायोजन की नीति बनाते समय इस बहुआयामी यथार्थ को ध्यान में रखना आवश्यक है। नीति-निर्माताओं के लिए यह आवश्यक है कि वे विकलांगता को उसके समस्त आयामों में समझें, और ऐसे उपायों की संरचना करें जो आवश्यकताओं के अनुपात में, समावेशी पहुंच के साथ, तथा भिन्नताओं और आकांक्षाओं के प्रति सम्मानपूर्ण हों। युक्तियुक्त समायोजन को इस प्रकार नहीं समझा जाना चाहिए कि वह प्रत्येक विकलांग व्यक्ति को उसके लिए आवश्यक विशेष समायोजन से वंचित कर दे। इस सिद्धांत में न केवल उस विकलांग वर्ग की आवश्यकताओं को पूरा करने की आकांक्षा निहित है, बल्कि उस वर्ग से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति की विशिष्ट आवश्यकताओं को भी समाहित करना आवश्यक है। युक्तियुक्त समायोजन के सिद्धांत को यह भी ध्यान में रखना होगा कि विकलांगता आधारित भेदभाव बहुस्तरीय एवं इंटरसेक्शनल (intersectional) होता है, जो विशेष संदर्भों में उत्पन्न होता है — जैसे एकाधिक विकलांगताओं की उपस्थिति एवं उनके बहुविध परिणाम। इसलिए विकलांगता को एक-आयामी दृष्टिकोण से नहीं समझा जा सकता। युक्तियुक्त समायोजन की नीति-निर्माण प्रक्रिया में यह आवश्यक है कि विकलांगता को सभी आयामों में समझा जाए, और ऐसे उपाय तैयार किए जाएं जो न केवल आवश्यकताओं के अनुरूप हों, बल्कि समावेशी, भिन्नताओं को स्वीकारने वाले, और विकलांग व्यक्तियों की आकांक्षाओं का सम्मान करने वाले भी हों।

(iv) न्यायमूर्ति सुनंदा भंडारे फाउंडेशन बनाम भारत संघ [(2014) 14 SCC 383] में यह घोषित किया गया:

"9...विभिन्न रूप से सक्षम व्यक्तियों को राहत प्रदान करने के मामलों में, कार्यपालिका का दृष्टिकोण और रवैया उदार और राहत उन्मुख होना चाहिए, न कि बाधात्मक या निष्क्रिय..."

(v) फ्रांसिस कोराली मुल्लिन बनाम प्रशासक, केंद्र शासित प्रदेश दिल्ली व अन्य [(1981) 1 SCC 608] में यह कहा गया:

"जीवन का मूल अधिकार जो कि सबसे मूल्यवान मानव अधिकार है और जो सभी अन्य अधिकारों का आधार स्तंभ है, उसका व्याख्या एक व्यापक और संवेदनशील दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए ताकि उसे वह गंभीरता और जीवंतता प्राप्त हो सके, जो आने वाले वर्षों तक बनी रहे और व्यक्ति

की गरिमा एवं मानवता के मूल्य को सुदृढ़ कर सके।"इस निर्णय में "गरिमा के अधिकार (*Right to Dignity*)" को जीवन के अधिकार (*Right to Life*) के एक अविभाज्य अंग के रूप में विशेष रूप से मान्यता दी गई है: जीवन के अधिकार की यह विस्तृत व्याख्या, दृष्टिबाधित व्यक्तियों के सन्दर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, जिन्हें अपने दैनिक जीवन को गरिमा के साथ जीने हेतु अधिक संख्या में सहायक कौशल-वर्धक सुविधाओं की आवश्यकता होती है, ताकि वे समाज द्वारा आश्रित एवं असहाय माने जाने की मानसिकता से बच सकें।

(vi) राजीव रतूड़ी बनाम भारत संघ [(2018) 2 SCC 413] में न्यायमूर्ति ए.के. सिकरी ने यह कहा:

"26. राज्य सरकारों और केंद्र शासित प्रदेशों को यह समझना चाहिए कि विकलांग व्यक्तियों के अधिकार अधिनियम, 2016 (*RPwD Act*) के तहत उनकी जिम्मेदारियाँ बढ़ गई हैं और उन्हें इस अधिनियम के उद्देश्यों को यथार्थ में बदलने के लिए कार्य करना होगा, क्योंकि अब इस कानून में विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों के कई क्षेत्रों पर विशेष बल दिया गया है। जब कानून स्वयं विकलांग व्यक्तियों के हितों को इतनी प्राथमिकता देता है और उनके लिए विशेष प्रावधान करता है, तो कानून प्रवर्तन एजेंसियों पर यह बाध्यता है कि वे इन प्रावधानों को शीघ्रता एवं तत्परता से लागू करें।

इस संदर्भ में उठाए गए सभी कदमों को एक ठोस अनुपालन रिपोर्ट के रूप में निर्दिष्ट समय सीमा में प्रस्तुत किया जाना चाहिए। जब हम राज्यों को निर्देश दे रहे हैं, तो उन पर यह कर्तव्य भी अधिरोपित होता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि सहकारी समितियाँ, कंपनियाँ, फर्मों, संस्थाओं, एवं संस्थानों पर लागू वैधानिक प्रावधानों का ईमानदारीपूर्वक पालन हो। राज्य सरकारें अधिनियम, 2016 के प्रावधानों का शीघ्र अनुपालन सुनिश्चित करें और अनुपालन रिपोर्ट प्रस्तुत करें ताकि यह न्यायालय प्रगति की समीक्षा कर सके।"

(vii) रवीन्द्र कुमार धरिवाल बनाम भारत संघ [(2021) 14 SCC 139] में यह कहा गया:

"77. चूंकि विकलांगता एक सामाजिक संरचना (*Social Construct*) है, जो मानसिक अक्षमता एवं सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक और अन्य अवरोधों के परस्पर प्रभाव पर आधारित होती है, इसलिए किसी व्यक्ति की विकलांगता का मूल्यांकन 'एक-जैसा समाधान सभी पर लागू' (*One-size-fits-all*) दृष्टिकोण के माध्यम से नहीं किया जा सकता। विकलांगता सार्वभौमिक नहीं होती, बल्कि यह एक व्यक्तिनिष्ठ (*individualistic*) अवधारणा होती है, जो उस व्यक्ति की अक्षमता और वह जिन अवरोधों का सामना करता है, उन पर निर्भर करती है। चूंकि हर व्यक्ति जिन अवरोधों का सामना करता है, वे उसके आसपास के वातावरण — सामाजिक, व्यक्तिगत एवं संरचनात्मक पर निर्भर होते हैं, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि 'एक व्यक्ति को इस प्रकार व्यवहार करना चाहिए था' जैसा कोई सामान्य अवलोकन किया जाए।"

78. विधानिक ढाँचे और इस न्यायालय के निर्णयों में पहले से इस बात पर विचार किया गया है कि किसी व्यक्ति की मानसिक स्थिति पर "बाधाओं" या परिस्थितियों के प्रभाव क्या होते हैं। जब किसी व्यक्ति को इन

बाधाओं से संपर्क के कारण स्वयं को "विकलांग" महसूस होने लगता है, तो यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि मानसिक स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं या किसी अन्य प्रकार की विकलांगता से ग्रसित व्यक्तियों के प्रति कलंक या भेदभाव न किया जाए। ऐसा कोई भी भेदभाव व्यक्ति के भीतर "विकलांग" होने की भावना को और गहरा कर देता है, जो उसके समावेशी जीवन की संभावना को बाधित करता है।

...

82.CRPD (*Convention on the Rights of Persons with Disabilities*), संयुक्त राष्ट्र का एक अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार संधि-पत्र है, जिसका उद्देश्य सभी विकलांग व्यक्तियों को संपूर्ण और समानरूप

से मानवाधिकारों और मौलिक स्वतंत्रताओं का आनंद लेने, उनके संरक्षण और संवर्धन को सुनिश्चित करना है। [अनुच्छेद 1, CRPD, 2006] यह संधि विकलांग व्यक्तियों की अंतर्निहित गरिमा (*inherent dignity*) के लिए सम्मान को बढ़ावा देने का भी प्रयास करती है। यह एक समग्र (*holistic*) संधि है जो नागरिक और राजनीतिक अधिकारों को विरोधी-भेदभाव कानूनों (*anti-discrimination laws*) के माध्यम से प्रदान करती है, साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उपायों का समावेश कर समानता की गारंटी को व्यावहारिक रूप देती है। [स्रोत: जैना कोठारी, "The UN Convention on Rights of Persons with Disabilities: An Engine for Law Reform in India", 45(18) *Economic and Political Weekly* 65-72 (2010)] भारत इस संधि का हस्ताक्षरकर्ता है और उसने इसे 1 अक्टूबर 2007 को अनुमोदित (*ratify*) किया। CRPD का अनुच्छेद 1 विकलांग व्यक्तियों की एक समावेशी परिभाषा प्रस्तुत करता है। यह मानता है कि विकलांगता एक विकसित होती रहने वाली अवधारणा (*evolving concept*) है, जो व्यक्ति की अक्षमता और सामाजिक एवं पर्यावरणीय बाधाओं के संपर्क में आने से उत्पन्न होती है, जिससे वे समाज में समान रूप से भागीदारी नहीं कर पाते। [प्रस्तावना, CRPD 2006] अनुच्छेद 1 में कहा गया है:

"... विकलांग व्यक्तियों में वे लोग शामिल हैं जिनमें दीर्घकालिक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक या संवेदी अक्षमताएँ होती हैं, जो विभिन्न बाधाओं के साथ संपर्क में आने पर समाज में दूसरों के समान पूर्ण और प्रभावी भागीदारी को बाधित कर सकती हैं।"

RPwD अधिनियम, 2016 की धारा 20(4) और विकलांग व्यक्तियों को प्राप्त "उचित समायोजन (*reasonable accommodation*)" के सामान्य अधिकार के आलोक में, अपीलकर्ता को उसी वेतनमान और लाभों के साथ उपयुक्त पद पर पुनर्नियुक्त किया जाना चाहिए। CRPF यह चयन कर सकती है कि वर्तमान मानसिक स्वास्थ्य स्थिति को ध्यान में रखते हुए अपीलकर्ता को किस पद पर नियुक्त किया जाए। उपयुक्तता का आकलन इस बात के आधार पर किया जाना चाहिए कि अपीलकर्ता को किन समायोजन की आवश्यकता है — यह एक व्यक्तिगत आकलन (*individualised assessment*) होगा। प्रशासन यह भी सुनिश्चित कर सकता है कि नया पद किसी ऐसे कार्य से संबंधित न हो जिसमें आग्नेयास्त्रों या खतरनाक उपकरणों का प्रयोग या नियंत्रण शामिल हो, जिससे स्वयं अपीलकर्ता या कार्यस्थल के अन्य लोगों को कोई जोखिम हो सकता है।

अतः, इन निर्णयों से यह बात स्पष्ट होती है कि: "उचित समायोजन (*reasonable accommodation*) कोई विवेकाधीन उपाय नहीं है, बल्कि यह विकलांग व्यक्तियों को

वास्तविक समानता (substantive equality) दिलाने के लिए एक मौलिक अधिकार है, जो संविधान के अनुच्छेद 21 के अंतर्गत गरिमा के अधिकार (Right to Dignity) का अभिन्न अंग है।” यह उल्लेख करना भी उपयुक्त होगा कि भारतीय संविधान के 73वें और 74वें संशोधन ने राज्य के लिए यह एक संवैधानिक दायित्व बना दिया है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा के लिए प्रावधान करे, जिनमें ‘विकलांग और मानसिक रूप से मंद व्यक्तियों’ को भी शामिल किया गया है। इसके अतिरिक्त, यह एक सुप्रस्थापित सिद्धांत है कि राज्यका यह उत्तरदायित्व है कि वह जनकल्याण को बढ़ावा देने वाले सामाजिक व्यवस्था की स्थापना हेतु निदेशक सिद्धांतों को लागू करे। अनुच्छेद 41 का भारतीय संविधान की योजना में क्या महत्व है, इसे इस न्यायालय के निर्णय Jacob M. Puthuparambil & Others बनाम केरल जल प्राधिकरण [AIR 1991 SC 1646] से समझा जा सकता है, जिसमें यह कहा गया कि:

“किसी अधिनियम की व्याख्या इस प्रकार की जानी चाहिए कि वह अनुच्छेद 41 को आगे बढ़ाए।” इसलिए, अनुच्छेद 41, जो एक निदेशक सिद्धांत है, राज्य पर यह कर्तव्य आरोपित करता है कि वह विकलांग व्यक्तियों सहित जनता को सहायता प्रदान करने के लिए प्रभावी प्रावधान करे।

E. अधिकार-आधारित दृष्टिकोण

41. RPwD अधिनियम, 2016 की भावना यह प्रकट करती है कि “उचित समायोजन” (reasonable accommodation) का सिद्धांत केवल PwD को समान अवसर देने तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इससे भी आगे बढ़कर व्यक्ति की गरिमा सुनिश्चित करने से संबंधित है। इसका मूल संदेश यह है कि—किसी व्यक्ति की योग्यता, क्षमता और उपयुक्तता का मूल्यांकन केवल चिकित्सीय या नैदानिक (clinical) मानकों से नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि इसे व्यक्ति की सामाजिक परिस्थिति, सहायक उपायों की उपलब्धता और उनकी क्षमता के प्रोत्साहन के आधार पर मापा जाना चाहिए। यह दृष्टिकोण न्यायसंगत समाज के निर्माण हेतु समानता के अधिकार और न्यायपूर्ण समावेश की नींव रखता है। किन्तु, किसी व्यक्ति की उपयुक्तता का मूल्यांकन उस स्थिति में किया जाना चाहिए जब उसे उचित समायोजन (reasonable accommodation) और सक्षम वातावरण (enabling atmosphere) प्रदान किया गया हो। इस संदर्भ में, इस न्यायालय का निर्णय Vikash Kumar (उपरोक्त) अत्यधिक महत्व रखता है। इस प्रकरण में इस न्यायालय ने विकलांगता के सामाजिक मॉडल (social model of disability) को अपनाते हुए उचित समायोजन के सिद्धांत का विस्तृत रूप से विवेचन किया। इस निर्णय के प्रत्युत्तर में,

भारत सरकार के विकलांगता कार्य विभाग (Department of Disability Affairs) ने लिखित परीक्षाओं में उपस्थित होने हेतु सभी निर्दिष्ट विकलांगताओं वाले व्यक्तियों के लिए लेखक (scribe) उपलब्ध कराने हेतु दिशा-निर्देश अधिसूचित किए, जिससे पूर्व में केवल बेंचमार्क विकलांगता वाले व्यक्तियों तक सीमित की गई सुविधा को व्यापक रूप प्रदान किया गया। अत्यंत महत्वपूर्ण रूप से, इस न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय Surendra Mohan (उपरोक्त) को अवमूल्यन (overrule) करते हुए यह प्रतिपादित किया कि—“कोई भी निर्णय जो उचित समायोजन के सिद्धांत से अनभिज्ञ हो, वह विकलांगता के आधार पर भेदभाव के समकक्ष होगा और समावेशी समानता (inclusive equality) के आदर्श के साथ भी गंभीर विरोध में होगा।” इस निर्णय के पश्चात, जो अधिकार-आधारित दृष्टिकोण (rights-based model) पर केन्द्रित है और विकलांगता के चिकित्सीयकरण (medicalisation) को अस्वीकार करता है, विकलांग व्यक्तियों की उपयुक्तता और क्षमता के मूल्यांकन हेतु जो “संदेहपूर्ण चिकित्सा विशेषज्ञता आधारित मॉडल” (suspicion-ridden medical expertise-driven model) अपनाया जाता था, वह न केवल इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के प्रतिकूल है, अपितु RPwD अधिनियम, 2016 की भावना के भी सीधे विरोध में है।

42. वर्तमान मामले में भी, चिकित्सा विशेषज्ञ की राय केवल नैदानिक मूल्यांकन (clinical assessment) और संदेह पर आधारित है। इसी के आधार पर मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा (भर्ती और सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A को संशोधित कर दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को न्यायिक अधिकारियों के पद हेतु चयन प्रक्रिया से विशेष रूप से बाहर रखा गया, जो कि RPwD अधिनियम, 2016 — जो एक ‘सुपर स्टैच्यूट’ के रूप में विकसित हो चुका है — में निहित वास्तविक समानता (substantive equality) की गारंटी एवं उचित समायोजन (reasonable accommodation) के सिद्धांत के पूर्णतः विपरीत है। भारत द्वारा अंतरराष्ट्रीय दायित्वों के अंतर्गत इस अधिनियम में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया है। विकलांगता संबंधी अधिकारों का यह अधिकार-आधारित मॉडल, अब देश की विरोधी-भेदभाव संरचना (anti-discrimination regime) का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। केवल एक डॉक्टर की चिकित्सा रिपोर्ट के आधार पर तैयार यह विवादित नियम, उपर्युक्त विवेचना के आलोक में, भारत जैसे देश में निरंतर विकसित हो रहे विकलांगता विधिशास्त्र (disability jurisprudence) में कोई स्थान नहीं रखता। ऐसी निष्कर्षात्मक राय, जो मात्र नैदानिक मूल्यांकन पर आधारित हो और जो उचित समायोजन के सिद्धांत से अनभिज्ञ हो, उसे न्यायिक सेवाओं के पद हेतु विकलांग

व्यक्तियों की क्षमता का निष्पक्ष और उचित मूल्यांकन नहीं माना जा सकता। यह भी प्रासंगिक है कि यदि किसी व्यक्ति को विधि में स्नातक (Law Degree) प्राप्त करने की अनुमति दी गई है, तो फिर व्यवसाय, नियुक्तियाँ और सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में अन्य अवसरों में भागीदारी हेतु वह स्वाभाविक रूप से पात्र माना जाएगा। अतः, वैध अपेक्षा का सिद्धांत (principle of legitimate expectation) भी इस मामले में लागू होता है, जो गैर-मनमानेपन (non-arbitrariness) के सिद्धांत का अंग है और समानता के सिद्धांत को आगे बढ़ाता है। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि संयुक्त राष्ट्र CRPD समिति ने अनुच्छेद 5 (समानता और गैर-भेदभाव) पर अपने सामान्य टिप्पणी संख्या 6 (General Comment No.6) में समावेशी/परिवर्तनकारी समानता (inclusive/transformational equality) की अवधारणा विकसित की है। समिति की टिप्पणी का प्रासंगिक अंश इस प्रकार है:

"समावेशी समानता, विकलांगता के एक नए मॉडल — मानवाधिकार आधारित मॉडल — से मेल खाती है, जो चैरिटी, कल्याण और चिकित्सीय दृष्टिकोणों को पीछे छोड़कर यह मानता है कि विकलांगता मूलतः एक चिकित्सीय मुद्दा नहीं है, बल्कि एक सामाजिक संरचना है, और कोई भी दुर्बलता (impairment) मानवाधिकारों से वंचित करने या उन्हें सीमित करने का वैध आधार नहीं हो सकती।"

भारत इस कन्वेंशन का हस्ताक्षरकर्ता (signatory) है, अतः इस समावेशी समानता के उद्देश्य को पूर्ण करने हेतु बाध्य है। उपर्युक्त दृष्टिकोण के प्रकाश में, दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा हेतु 'अयोग्य' नहीं कहा जा सकता और नियम 6A, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा परीक्षा नियम, 1994 संविधान के विपरीत (falls foul of the Constitution) है।

एफ. परोक्ष भेदभाव (Indirect Discrimination)

43. मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा नियमों के नियम 7 के प्रावधान के संदर्भ में, यद्यपि इसे PwD तथा सक्षम अभ्यर्थियों दोनों द्वारा चुनौती दी गई थी, किंतु यह तथ्य रिकार्ड पर है कि अपीलार्थी आदेश में उक्त नियम की सामान्य विधिक सिद्धांतों के आलोक में समीक्षा की गई थी, न कि विकलांगता विधिशास्त्र के संदर्भ में। वर्तमान प्रकरण में, उक्त नियम का परीक्षण केवल दृष्टिबाधित PwD अभ्यर्थियों द्वारा की गई चुनौती के संदर्भ में किया जा रहा है, जो विधिक रूप से योग्य अधिवक्ता हैं और न्यायिक अधिकारी बनने की आकांक्षा रखते हैं। अतः, इस संदर्भ में परोक्ष भेदभाव (indirect discrimination) का सिद्धांत अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है। संक्षेप में, परोक्ष भेदभाव का आधार यह है कि असमानों को समान रूप से व्यवहार करना उचित नहीं है, और कभी-कभी समान व्यवहार भी असमान परिणामों को जन्म दे सकता है। अपीलकर्ताओं के अधिवक्ता द्वारा उन

व्यावहारिक कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाया गया, जिनका PwD वास्तव में सामना करते हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि—तीन वर्ष का अधिवक्ताकाल, और पहले प्रयास में 70% अंक प्राप्त करने की वैकल्पिक शर्त, यद्यपि पहली दृष्टि में न्यायसंगत प्रतीत होती हैं, परन्तु वास्तव में ये प्रयोग में भेदभावकारी हैं। इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि SC/ST अभ्यर्थियों को विधि स्नातक में न्यूनतम अंकों की शर्त के संबंध में छूट प्रदान की गई थी। Col. नीतिशा बनाम भारत संघ में, न्यायमूर्ति डी.वाई. चंद्रचूड़ (तत्कालीन) ने यह टिप्पणी की कि—“भारत में परोक्ष भेदभाव संबंधी विधिशास्त्र अभी भी प्रारंभिक अवस्था में है। परोक्ष भेदभाव उन सतही रूप से तटस्थ मापदंडों से उत्पन्न होता है, जो किसी प्रावधान, अभ्यास या मानदंड के अंतर्निहित प्रभावों पर विचार नहीं करते हैं।”

“हमें यहाँ यह स्वीकार करना होगा कि हमारे समाज की संरचनाएँ पुरुषों द्वारा और पुरुषों के लिए बनाई गई हैं। परिणामस्वरूप, कुछ संरचनाएँ जो ‘सामान्य’ प्रतीत होती हैं और निरापद दिखती हैं, वे वास्तव में एक सूक्ष्म पितृसत्तात्मक व्यवस्था का प्रतिबिंब हैं। ये समायोजन और संशोधन वास्तव में किसी वर्ग को दी जा रही रियायतें नहीं हैं, बल्कि वे वे अन्याय हैं जिनका शमन किया जा रहा है—उन अवसरों की पूर्ति हेतु, जो महिलाओं को पहले ही प्रदान किए जाने चाहिए थे... असमान पक्षकारों पर विधियों का सतही रूप से समान रूप से लागू होना एक छल है, जब स्वयं विधि पुरुष दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर गढ़ी गई हो।”

उपरोक्त उद्धृत इस न्यायालय के अवलोकन समान रूप से PwD (विकलांग व्यक्तियों) पर भी लागू होते हैं।

44. नवतेज सिंह जोहर बनाम भारत संघ (UOI) एवं अन्य में भी इस न्यायालय ने परोक्ष भेदभाव (Indirect Discrimination) की अवधारणा को विभिन्न अंतरराष्ट्रीय निर्णयों की सहायता से स्पष्ट किया है, जब वह ऐसे विधिक प्रावधान की वैधता पर विचार कर रहा था, जो यद्यपि सतही रूप से तटस्थ प्रतीत होता है, किंतु विशिष्ट नागरिक समुदायों या पहचानों के विरुद्ध भेदभावकारी प्रभाव उत्पन्न करता है। निर्णय का प्रासंगिक अंश संदर्भ हेतु निम्नानुसार उद्धृत किया गया है:

ई 1 — सतही तटस्थता: ‘थ्रू द लुकिंग ग्लास’ दृष्टिकोण से

441. धारा 377 के अंतर्निहित नैतिक विश्वास के अनुसार, वे सभी यौन क्रियाएँ जो प्रजनन की ओर नहीं ले जातीं, वे 'प्राकृतिक क्रम के विरुद्ध' मानी जाती हैं और उन्हें अपराध घोषित किया जाना चाहिए। हस्तक्षेपकर्ताओं का कहना था कि धारा 377, विषमलैंगिक (*heterosexual*) जोड़ों द्वारा किए गए गुदा और मुखमैथुन को भी अपराध घोषित करती है। अतः यह तर्क दिया गया कि धारा 377 सभी यौन क्रियाओं पर समान रूप से लागू होती है जो 'प्राकृतिक क्रम के विरुद्ध' हैं, यौन अभिविन्यास की परवाह किए बिना। यह प्रस्तुति असंगत है। NALSA मामले में इस न्यायालय ने यह माना था कि धारा 377, यद्यपि विशिष्ट यौन क्रियाओं से संबंधित है, फिर भी यह विशेष पहचानों को निशाना बनाती है। Naz Foundation मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय ने प्रभावी रूप से यह प्रदर्शित किया था कि कैसे धारा 377, यद्यपि सतही रूप से तटस्थ है, फिर भी प्रभाव में विशिष्ट समुदायों को लक्षित करती है।”

“भारतीय दंड संहिता की धारा 377 सतही रूप से तटस्थ प्रतीत होती है और यह स्पष्टतः किसी पहचान (*identities*) को नहीं बल्कि कृत्यों (*acts*) को लक्षित करती है, किन्तु इसके क्रियान्वयन में यह एक विशेष समुदाय को अनुचित रूप से निशाना बनाती है। तथ्य यह है कि जिन यौन कृत्यों को अपराध घोषित किया गया है, वे एक विशेष वर्ग—अर्थात् समलैंगिकों—से अधिक निकटता से जुड़े हैं। धारा 377 का प्रभाव यह है कि समलैंगिक पुरुषों को स्वतः ही अपराधी की दृष्टि से देखा जाता है। जब समलैंगिकता से जुड़ी हर बात को विकृत, विचलित या घृणास्पद माना जाता है, तो संपूर्ण गे और लेस्बियन समुदाय को विकृति और अपवित्रता के प्रतीक के रूप में चिह्नित कर दिया जाता है। उन्हें व्यापक पूर्वग्रहों का सामना करना पड़ता है, जो उनके आचरण के कारण नहीं, बल्कि उनके होने या ऐसा माने जाने के कारण होते हैं। परिणामस्वरूप, जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण वर्ग अपनी यौन असंगतता के कारण उत्पीड़ित, बहिष्कृत और सामाजिक रूप से अलग-थलग कर दिया जाता है।

इस परिप्रेक्ष्य में, न्यायालय ने धारा 377 के पीड़ितों के अनुभवों का दस्तावेजीकरण किया और याचिकाकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत शपथ-पत्रों तथा अभिलेखों पर भरोसा करते हुए, हिरासत में बलात्कार व प्रताड़ना, सामाजिक बहिष्कार, अमानवीय व अपमानजनक व्यवहार तथा कारावास के उदाहरण प्रस्तुत किए। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि यद्यपि धारा 377 विशेष कृत्यों को अपराध घोषित करती है, यह समलैंगिक समुदाय और गैर-विषमलैंगिक आचरण करने वाले व्यक्तियों के लिए व्यवस्थित रूप से नुकसान, बहिष्कार और गरिमा के हनन का कारण बनती है।

442. राष्ट्रीय सीमाओं से परे न्यायशास्त्र इस सिद्धांत का समर्थन करता है कि राज्य की सतही रूप से तटस्थ कार्यवाही भी किसी विशेष वर्ग पर अनुपातहीन प्रभाव डाल सकती है। यूरोप में, यूरोपीय संसद और परिषद के 5 जुलाई 2006 के निर्देश (*Directive*) 2006/54/EC में 'परोक्ष भेदभाव' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है: जहाँ कोई सतही रूप से तटस्थ प्रावधान, मापदंड या व्यवहार किसी एक लिंग के व्यक्तियों को दूसरे लिंग के व्यक्तियों की तुलना में विशेष नुकसान की स्थिति में डाल दे, जब तक कि वह प्रावधान, मापदंड या व्यवहार किसी वैध उद्देश्य से युक्त न हो तथा उस उद्देश्य को प्राप्त करने का माध्यम उचित व आवश्यक हो।”

443. मामले *Griggs v. Duke Power Co.* [MANU/USSC/0066/1971: 401 U.S. 424 (1971)] में अमेरिकी उच्चतम न्यायालय ने यह स्वीकार किया कि अफ्रीकी-अमेरिकियों को पृथक स्कूलों में निम्न स्तर की शिक्षा मिलती थी, और इस कारण 'योग्यता/बुद्धिलब्धि परीक्षण' की आवश्यकता ने अफ्रीकी-अमेरिकी उम्मीदवारों को अनुपातहीन रूप से प्रभावित किया। न्यायालय ने कहा कि "सिविल राइट्स एक्ट न केवल स्पष्ट भेदभाव को निषिद्ध करता है, बल्कि उन व्यवहारों को भी जो रूप में तो निष्पक्ष हों, परंतु संचालन में भेदभावपूर्ण हों।"

444. *Bilka-Kaufhaus GmbH बनाम Karin Weber von Hartz* [(1986) ECR 1607] में यूरोपीय न्यायालय ने कहा कि अंशकालिक (*part-time*) कर्मचारियों को पेंशन से वंचित करना महिलाओं को अधिक प्रभावित करेगा, क्योंकि महिलाएँ अधिकतर अंशकालिक कार्यों को अपनाती हैं। न्यायालय ने उल्लेख किया कि... "यूरोपीय आर्थिक समुदाय (EEC) की संधि के अनुच्छेद 119 का उल्लंघन उस डिपार्टमेंटल स्टोर कंपनी द्वारा किया जाता है, जो अंशकालिक (*part-time*) कर्मचारियों को अपनी व्यावसायिक पेंशन योजना से बाहर कर देती है, जहाँ यह बहिष्करण महिलाओं की अपेक्षा बहुत अधिक संख्या को प्रभावित करता है, जब तक कि वह प्रतिष्ठान यह प्रदर्शित न कर दे कि यह बहिष्करण लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव से असंबंधित वस्तुनिष्ठ और उचित कारणों पर आधारित है।"

445. कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय ने यह सिद्धांत स्वीकार किया कि कोई कार्यवाही तब भी भेदभावपूर्ण हो सकती है जब उसका प्रभाव किसी वर्ग पर अनुपातहीन रूप से पड़ता है। *Andrews v. Law Society of British Columbia* [MANU/SCCN/0036/1989: (1989) 1 SCR 143] में न्यायालय ने कहा:

"भेदभाव वह अंतर है, जो चाहे जानबूझकर किया गया हो या नहीं, परंतु जो किसी व्यक्ति या समूह की व्यक्तिगत विशेषताओं के आधार पर किया गया हो और जिसके परिणामस्वरूप ऐसे नुकसान उत्पन्न हों जो अन्य लोगों पर लागू नहीं होते या जिससे उन लाभों और अवसरों तक पहुँच सीमित हो जाए जो समाज के अन्य सदस्यों को उपलब्ध हैं।

वे अंतर जो केवल किसी समूह के साथ व्यक्ति की संबद्धता के आधार पर उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं पर आधारित माने जाते हैं, वे शायद ही कभी भेदभाव के आरोप से बच पाएँगे; जबकि जो अंतर व्यक्ति की योग्यता और क्षमताओं के आधार पर हों, उन्हें शायद ही कभी भेदभाव कहा जाएगा।"

इस प्रकार, जब कोई कार्यवाही ऐसे बोझ, दायित्व या नुकसान उस व्यक्ति या समूह पर डालती है जो दूसरों पर नहीं डाले जाते, या जो उन अवसरों, लाभों और सुविधाओं तक पहुँच को रोकती या सीमित करती है जो समाज के अन्य सदस्यों को उपलब्ध हैं — तो ऐसी कार्यवाही संदेह के घेरे में आती है।"

446. *City Council of Pretoria v. Walker* [MANU/SACC/0001/1998: (1998) 3 BCLR 257] में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने निम्नलिखित अवलोकन किया:

परोक्ष भेदभाव की अवधारणा विशेष रूप से उन परिस्थितियों से निपटने के लिए विकसित की गई थी, जहाँ भेदभाव सतही रूप से तटस्थ मानदंडों के पीछे छिपा हुआ होता है या जहाँ ऐतिहासिक अधीनता के प्रतिरूपों से पहले से ही प्रभावित व्यक्तियों की स्थिति, ऐसे उपायों के प्रभाव से और अधिक बिगड़ जाती है जो स्पष्टतः उन्हें नुकसान पहुँचाने के उद्देश्य से नहीं लाए गए होते हैं।

कई मामलों में, विशेष रूप से जहाँ परोक्ष भेदभाव का आरोप होता है, यदि शिकायतकर्ता को यह सिद्ध करना पड़े कि उसे न केवल अनुचित रूप से भेदभाव का शिकार बनाया गया बल्कि यह भी कि वह भेदभाव जानबूझकर किया गया था, तो इस प्रकार की संरक्षणात्मक प्रक्रिया का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा। यह समस्या विशेष रूप से परोक्ष भेदभाव के मामलों में गंभीर होती है, जहाँ अक्सर उस आपत्तिजनक व्यवहार या कार्यवाई के पीछे कोई अन्य उद्देश्य (भेदभावपूर्ण उद्देश्य के अतिरिक्त) भी होता है।”

45. मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा नियमों के नियम 7 के परिशिष्ट प्रावधान (Proviso) के परिप्रेक्ष्य में परोक्ष भेदभाव (Indirect Discrimination) से संबंधित कुछ अन्य निर्णयों को भी रेखांकित किया जाना समीचीन होगा, ताकि इस अवधारणा की गहराई से समझ हो सके। वे निर्णय निम्नलिखित हैं:

(i) Walter E. Washington आदि बनाम Alfred E. Davis आदि [26], जिसमें यह मामला एक अर्हता परीक्षा (qualifying test) की वैधता से संबंधित था, जो दो नीग्रो (Negro) पुलिस अधिकारियों सहित आवेदकों को पदोन्नति हेतु दी गई थी। याचिकाकर्ताओं ने यह आरोप लगाया कि विभाग की पदोन्नति नीति नस्लीय रूप से भेदभावपूर्ण थी और यह संयुक्त राज्य अमेरिका के संविधान के पाँचवें संशोधन (Fifth Amendment) के “न्यायिक प्रक्रिया का अधिकार” (Due Process Clause) का उल्लंघन करती है। यह परीक्षण जिला न्यायालय द्वारा वैध ठहराया गया था, किंतु अपीलीय न्यायालय द्वारा अमान्य करार दिया गया। संयुक्त राज्य अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय ने जिला न्यायालय की राय से सहमति जताई और अपीलीय न्यायालय के निर्णय को पलट दिया। इस प्रक्रिया में, न्यायालय ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण अवलोकन किया:

“यदि यह नियम मान लिया जाए कि एक ऐसा क़ानून जो अपने उद्देश्य में तटस्थ है, फिर भी वह अमान्य हो जाता है, जब तक कि कोई अत्यंत प्रबल औचित्य प्रस्तुत न किया जाए, केवल इस आधार पर कि व्यवहार में वह किसी एक नस्ल को दूसरी की तुलना में अधिक लाभ या हानि पहुँचाता है — तो यह एक अत्यंत व्यापक प्रभाव वाला सिद्धांत बन जाएगा, जिससे अनेक प्रकार के कराधान, कल्याणकारी योजनाओं, लोक सेवा, विनियमन और अनुज्ञापन (licensing) से संबंधित अधिनियम प्रभावित हो सकते हैं, जो गरीबों और औसत अश्वेत नागरिकों के लिए अधिक कठोर हो सकते हैं, जबकि संपन्न श्वेत नागरिकों के लिए कम।”

(ii) Council Directive 2000/78/EC (दिनांक 27 फ़रवरी 2000) में "परोक्ष भेदभाव" (Indirect Discrimination) की अवधारणा को परिभाषित किया गया है। S. Coleman बनाम Attridge Law एवं Steve Law [27] के प्रकरण में, यूनाइटेड किंगडम की Grand Chamber द्वारा यह निर्णय दिया गया कि —निर्देश 2000/78 के प्रावधानों के अंतर्गत निर्धारित उत्पीड़न (*harassment*) का निषेध केवल उन व्यक्तियों तक सीमित नहीं है जो स्वयं विकलांग हैं; जब यह स्थापित हो जाए कि किसी कर्मचारी को, जो स्वयं विकलांग नहीं है, उसकी संतान की विकलांगता के कारण उत्पीड़नकारी आचरण सहना पड़ रहा है — जिसकी देखभाल प्राथमिक रूप से वही कर्मचारी करता है — तो ऐसा आचरण, उत्पीड़न के निषेध के प्रावधानों का उल्लंघन माना जाएगा।"

(iii) South African Constitutional Court द्वारा City Council of Pretoria बनाम Walker [28] में संविधान की व्याख्या एवं प्रवर्तन करते हुए कहा गया —"परोक्ष भेदभाव की अवधारणा विशेष रूप से उन परिस्थितियों से निपटने हेतु विकसित की गई है जहाँ भेदभाव स्पष्टतः तटस्थ प्रतीत होने वाले मानदंडों के पीछे छिपा होता है या जहाँ पहले से ही ऐतिहासिक अधीनता (*historic subordination*) से पीड़ित व्यक्तियों को उनके कष्ट को और सुदृढ़ या गहन करने वाले उपायों के कारण असमानता का सामना करना पड़ता है, भले ही ऐसे उपाय प्रत्यक्ष रूप से भेदभाव करने के उद्देश्य से नहीं बनाए गए हों।"

"अनेक मामलों में, विशेष रूप से जहाँ परोक्ष भेदभाव का आरोप लगाया गया हो, वहाँ यदि शिकायतकर्ता को यह भी सिद्ध करना पड़े कि उस पर हुआ भेदभाव जानबूझकर (*intentional*) था, तो संरक्षण का उद्देश्य विफल हो जाएगा। यह समस्या विशेष रूप से तीव्र तब होती है जब आपत्ति जताई गई कार्यवाही या आचरण में भेदभाव के अतिरिक्त कोई अन्य उद्देश्य भी शामिल हो।"

उपरोक्त निर्णय का संदर्भ भारत के नीतिशा (उपर्युक्त) प्रकरण एवं दिल्ली उच्च न्यायालय के मधु बनाम नोर्दन रेलवे ²⁹ प्रकरण में दिया गया था।

(iv) हाल ही में माल्हुंगु बनाम श्रम मंत्री³⁰ के एक निर्णय में, दक्षिण अफ्रीकी संवैधानिक न्यायालय (SACC) को व्यावसायिक चोटों और रोगों के लिए मुआवजा अधिनियम, 1993 (अधिनियम संख्या 130) की धारा 1(xix)(v) की संवैधानिकता पर फैसला सुनाना पड़ा। यह प्रावधान घरेलू कामगारों (domestic workers) को उक्त अधिनियम की परिभाषा में 'कर्मचारी' के अंतर्गत सम्मिलित नहीं करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि घरेलू कामगारों को चोट, अक्षमता या मृत्यु की स्थिति में अधिनियम के अंतर्गत सामाजिक सुरक्षा लाभों से वंचित कर दिया गया। न्यायालय ने निर्णय दिया कि यह प्रावधान संविधान में निर्धारित परोक्ष भेदभाव के निषेध से आहत है।

(v) Ontario Human Rights Commission बनाम Simpsons – Sears [31] प्रकरण में, Canadian Supreme Court ने Ontario Human Rights Code की धारा 4(1)(g) के अंतर्गत विचार करते हुए परोक्ष भेदभाव के सिद्धांत को विस्तृत रूप से प्रतिपादित किया। (v) क्या कोई कार्य नीति जो शुक्रवार की शाम और शनिवार को कठोर कार्य समय निर्धारित करती है, अपीलकर्ता के धर्म के आधार पर परोक्ष भेदभाव करती है, क्योंकि उसके धर्म में सब्बाथ (Sabbath) का कठोरता से पालन आवश्यक था — इस संदर्भ में Canadian Supreme Court ने निम्नलिखित कहा:

“18. यहाँ एक अंतर किया जाना आवश्यक है जिसे मैं प्रत्यक्ष भेदभाव (*direct discrimination*) और उस अवधारणा के बीच रखता हूँ जिसे हमने पहले ही रोजगार से संबंधित प्रतिकूल प्रभाव वाले भेदभाव (*adverse effect discrimination*) के रूप में वर्णित किया है। प्रत्यक्ष भेदभाव उस स्थिति में उत्पन्न होता है जब नियोक्ता ऐसा नियम या प्रथा अपनाता है जो अपने आप में निषिद्ध आधार पर भेदभाव करता है। उदाहरण के लिए: “यहाँ किसी कैथोलिक, महिला या अश्वेत को नियुक्त नहीं किया जाएगा।” इस तरह के प्रत्यक्ष भेदभाव की स्पष्ट रूप से अधिनियम के तहत मनाही है, इस पर कोई मतभेद नहीं है। दूसरी ओर, प्रतिकूल प्रभाव वाले भेदभाव की अवधारणा है। यह तब उत्पन्न होती है जब कोई नियोक्ता वास्तविक व्यावसायिक कारणों से ऐसा नियम या मानक अपनाता है जो देखने में तटस्थ होता है और सभी कर्मचारियों पर समान रूप से लागू होता है, लेकिन यह नियम किसी एक कर्मचारी या कर्मचारी समूह पर निषिद्ध आधार पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है — क्योंकि किसी विशेष विशेषता के कारण उस कर्मचारी या समूह को वह नियम ऐसे दायित्व, दंड या प्रतिबंधात्मक शर्तें लागू करता है जो कार्यबल के अन्य सदस्यों पर लागू नहीं होतीं। इन्हीं कारणों के आधार पर, जिससे यह निष्कर्ष निकला कि भेदभाव के लिए जानबूझकर की गई मंशा आवश्यक नहीं है, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि प्रतिकूल प्रभाव वाले भेदभाव को भी Code का उल्लंघन माना जाएगा। एक ऐसा रोजगार नियम जो पूरी ईमानदारी और सुदृढ़ व्यावसायिक कारणों से समान रूप से लागू किया गया हो, फिर भी वह भेदभावपूर्ण हो सकता है यदि वह कुछ व्यक्तियों या समूहों को दूसरों की तुलना में अलग तरीके से प्रभावित करता है।

इन तर्कों के आधार पर मैं यह निष्कर्ष निकालता हूँ कि अपीलकर्ता ने *creed* (धर्म-आधारित विश्वास) के आधार पर भेदभाव का *prima facie* मामला Board of Inquiry के समक्ष प्रस्तुत किया है।”

(vi) Oršuš बनाम क्रोएशिया [33] में, आवेदकों ने यह आरोप लगाया कि:

उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के दौरान केवल रोमा (Roma) छात्रों वाली पृथक कक्षाओं में अध्ययन किया, और इस प्रकार उन्हें शिक्षा के अधिकार के आनंद से भेदभावपूर्ण रूप से वंचित किया गया। उनकी जातीय या नस्लीय उत्पत्ति के आधार पर उन्हें प्राथमिक विद्यालयों में केवल रोमा छात्रों की कक्षाओं में पढ़ाया गया, जिससे उनके शिक्षा के अधिकार का हनन हुआ। “यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय (European Court of Human Rights) ने माना कि: “परोक्ष भेदभाव तब माना जाएगा, जब कोई तटस्थ प्रतीत होने वाला

प्रावधान, मापदंड या व्यवहार किसी जातीय समुदाय के लोगों को अन्य लोगों की तुलना में विशेष रूप से नुकसान की स्थिति में डाल दे — जब तक कि वह प्रावधान किसी वैध उद्देश्य से वस्तुनिष्ठ रूप से उचित न ठहराया गया हो और उस उद्देश्य को प्राप्त करने के उपाय उपयुक्त, आवश्यक और आनुपातिक हों।”

(vii) Action Travail des Femmes बनाम कैनेडियन नेशनल रेलवे कंपनी [34] में, कैनेडियन सुप्रीम कोर्ट ने एक महिला द्वारा नेशनल रेलवे कंपनी में समान रोजगार अवसरों की मांग पर विचार करते हुए, संगठनों के भीतर प्रत्यक्ष एवं परोक्ष भेदभाव के परस्पर सुदृढ़ प्रभाव को एक प्रणालीगत विशेषता (systemic feature) के रूप में स्वीकार किया और कहा:

“रोजगार के संदर्भ में प्रणालीगत भेदभाव (systemic discrimination) वह भेदभाव है जो भर्ती, नियुक्ति और पदोन्नति की स्थापित प्रक्रियाओं के सामान्य संचालन से उत्पन्न होता है, जिनमें से कोई भी अनिवार्य रूप से भेदभाव को बढ़ावा देने के लिए नहीं बनाया गया होता है। यह भेदभाव तब और मजबूत हो जाता है जब वंचित समूह को बाहर रखा जाता है, क्योंकि यह बहिष्करण उस समूह के भीतर और बाहर यह विश्वास पैदा करता है कि यह बहिष्करण किसी ‘प्राकृतिक कारण’ के चलते हुआ है — उदाहरण के लिए यह कहना कि महिलाएं ‘यह काम कर ही नहीं सकतीं’ (देखें Abella रिपोर्ट, पृ. 9-10)। प्रणालीगत भेदभाव से लड़ने के लिए यह अनिवार्य है कि एक ऐसा वातावरण तैयार किया जाए जिसमें नकारात्मक प्रथाओं और दृष्टिकोणों को चुनौती दी जा सके और हतोत्साहित किया जा सके।”

प्रणालीगत भेदभाव के विरुद्ध उपचार निर्धारित करते हुए, न्यायालय ने सचेत रूप से निम्नानुसार टिप्पणी की:

“उपचार केवल क्षतिपूर्क नहीं होने चाहिए, बल्कि भविष्य में स्थिति में सुधार लाने के लिए डिज़ाइन किए गए लाभ के संदर्भ में भविष्योन्मुखी भी होने चाहिए”। न्यायालय ने उपचार को इस प्रकार संरचित किया: “एक रोजगार इक्विटी कार्यक्रम इस प्रकार तीन तरीकों से काम करने के लिए डिज़ाइन किया गया है। पहला, प्रणालीगत भेदभाव के संचयी प्रभावों का मुकाबला करके, ऐसा कार्यक्रम आगे के भेदभाव को व्यर्थ बना देता है...।”

(viii) Action Travail des Femmes मामले में निर्धारित ढांचे का अनुसरण करते हुए, कनाडा मानवाधिकार न्यायाधिकरण (Human Rights Tribunal of Canada) ने नेशनल कैपिटल अलायन्स ओन रेस रिलेशनस बनाम कनाडा (स्वास्थ्य एवं कल्याण) [35] में यह निर्णय दिया कि स्वास्थ्य एवं कल्याण विभाग द्वारा उच्च प्रबंधन में दृश्य अल्पसंख्यकों (visible minorities) के लिए रोजगार अवसरों से वंचित करने वाले नीतिगत ढांचे ने नस्ल, रंग और जातीय उत्पत्ति के आधार पर भेदभाव किया। न्यायाधिकरण ने संगठन के समग्र ढांचे का मूल्यांकन किया, कर्मचारियों के साक्ष्यों और

मानव संसाधन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण के विशेषज्ञों की राय के आधार पर प्रणालीगत समस्याएं (systemic issues) पहचानी। यह पाया गया कि अल्पसंख्यकों के सीमित व्यावसायिक प्रोत्साहन, अनौपचारिक नियुक्तियों में अंतर्निहित पूर्वाग्रह, और नेतृत्व भूमिकाओं में उपयुक्तता की सामूहिक धारणा — इन सभी ने प्रणालीगत भेदभाव को जन्म दिया। इस भेदभाव के दुष्प्रभावों को सुधारने हेतु न्यायाधिकरण ने ठोस प्रतिकारात्मक उपाय निर्धारित किए। इस निर्णय का उल्लेख नितीशा (Nitisha) मामले में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा भी किया गया।

(ix) Abdulaziz, Cabales and Balkandali बनाम यूनाइटेड किंगडम [36] में यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने यह निर्णय दिया: जैसा कि वर्तमान मामले के संबंध में कहा जा सकता है, **लिंगों की समानता की उन्नति** आज यूरोपीय परिषद के सदस्य राज्यों में एक प्रमुख लक्ष्य है। इसका अर्थ है कि **लिंग के आधार पर उपचार में भिन्नता को कन्वेंशन के अनुकूल मानने से पहले बहुत ठोस कारण** प्रस्तुत करने होंगे। उक्त निर्णय के बाद, यूरोपीय मानवाधिकार न्यायालय ने वान राल्टे बनाम नीदरलैंड्स 37 में एक बार फिर टिप्पणी की कि आवेदक की प्रस्तुति में, 1962 में सामान्य बाल देखभाल लाभ अधिनियम की धारा 25 लागू होने पर भी लिंग के आधार पर उपचार में अंतर पहले से ही अस्वीकार्य थे। कन्वेंशन के अनुच्छेद 14 का स्पष्टीकरण दर्शाता है कि 1950 की शुरुआत से ही यही प्रमुख मत रहा था। इसके अलावा, कानूनी और सामाजिक विकास ने पुरुषों और महिलाओं के बीच समानता की दिशा में एक स्पष्ट प्रवृत्ति दिखाई। अब्दुलअजीज का भी संदर्भ दिया गया, जिसमें स्पष्ट रूप से कहा गया था कि "लिंगों की समानता की उन्नति आज यूरोपीय परिषद के सदस्य राज्यों में एक प्रमुख लक्ष्य है" और यह कि "लिंग के आधार पर उपचार में अंतर को कन्वेंशन के अनुकूल मानने से पहले बहुत ठोस कारण प्रस्तुत करने होंगे"। इन टिप्पणियों का इस न्यायालय द्वारा अनुज गर्ग (उपरोक्त) में भी उल्लेख किया गया था। (x) अप्रत्यक्ष भेदभाव के सिद्धांत के संबंध में, मद्रास उच्च न्यायालय का **एम. समीहा बरवीन बनाम भारत सरकार 38** का निर्णय महत्वपूर्ण है, जिसमें हममें से एक (न्यायमूर्ति आर. महादेवन) ने अवलोकन किया कि "जबकि अप्रत्यक्ष भेदभाव पर न्यायशास्त्र अभी भी विकसित हो रहा है, व्यवस्थित और अप्रत्यक्ष भेदभाव के ऐसे उदाहरणों की पहचान करना प्रासंगिक है, जो तटस्थता और सामाजिक कंडीशनिंग द्वारा बनाए गए प्रतीत होने वाले निर्दोष कारणों में ढके होते हैं, लेकिन जो हमारे संविधान में परिकल्पित और परिकल्पित विस्तृत वास्तविक समानता के समक्ष कानून की जांच में खरे नहीं उतर सकते, और उन्हें भेदभाव के स्पष्ट उदाहरणों की तरह ही खारिज कर देना चाहिए। अप्रत्यक्ष भेदभाव के ऐसे उदाहरण असमानता को बनाए रखते हैं और इस देश के प्रत्येक नागरिक को, उनकी व्यक्तिगत विशेषताओं और मतभेदों के बावजूद, उपलब्ध महत्वपूर्ण व्यक्तिगत स्वतंत्रता और स्वायत्तता को बाधित करते हैं।"

46. इस प्रकार, परोक्ष भेदभाव का सिद्धांत जो पूर्व में लैंगिक भेदभाव के परिप्रेक्ष्य में लागू किया गया था, उसे वर्तमान मामले में भी लागू किया जा सकता है, जहाँ न्यायिक अधिकारी के पद पर चयन हेतु भागीदारी के लिए कुछ शर्तों के आवेदन के मामले में विकलांग/दृष्टिबाधित कानूनी पेशेवरों को उनके सक्षम-शारीरिक समकक्षों के साथ समान करने की मांग की गई है।

परोक्ष भेदभाव की कसौटी को लागू करते हुए यह स्पष्ट है कि अभ्यास की सहजता तथा निर्धारित अंकों की प्राप्ति – दोनों ही स्थितियाँ विकलांग और सामान्य शारीरिक क्षमता वाले अधिवक्ताओं के लिए समान नहीं मानी जा सकतीं, क्योंकि जिस परिवेश में दोनों वर्ग कार्य करते हैं, वह समान नहीं कहा जा सकता। यह एक स्पष्ट उदाहरण है कि किस प्रकार असमान व्यक्तियों को समान रूप से व्यवहार करते हुए, वास्तविक समानता के सिद्धांत का उल्लंघन किया गया है। अतः, यह सहज रूप से निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वह नियम, जो या तो तीन वर्ष की प्रैक्टिस की शर्त या फिर प्रथम प्रयास में 70% अंक प्राप्त करने की वैकल्पिक शर्त निर्धारित करता है, परोक्ष भेदभाव का प्रत्यक्ष उदाहरण है, क्योंकि यद्यपि वह प्रावधान बाह्यतः तटस्थ प्रतीत होता है, किंतु क्रियान्वयन में भेदभावकारी है। उक्त के आलोक में, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा नियम, 1994 की धारा 7 उस सीमा तक अवैध घोषित की जाती है, जहाँ यह विकलांग अभ्यर्थियों पर या तो तीन वर्षों के अभ्यास अथवा प्रथम प्रयास में 70% अंक प्राप्त करने की अतिरिक्त शर्त लागू करता है। तदनुसार, विकलांग उम्मीदवारों के लिए उक्त नियम केवल इस सीमा तक लागू रहेगा जहाँ वह शैक्षणिक और अन्य योग्यता को निर्धारित करता है, जिसमें 70% न्यूनतम कुल अंक की योग्यता (जैसा कि SC/ST वर्ग के लिए छूट प्रदान की जाती है, वैसे ही छूट निर्धारित की जा सकती है) शामिल होगी, परंतु यह आवश्यक नहीं होगा कि ये अंक प्रथम प्रयास में ही प्राप्त किए जाएं या कि उनके पास तीन वर्ष का अधिवक्ता अनुभव हो। यह मुद्दा उपर्युक्त रूप में निस्तारित किया जाता है।

G. चयन मानदंडों में छूट एवं विकलांग अभ्यर्थियों के लिए पृथक कट-ऑफ – क्या वैध है?

47. अपीलकर्ता [SLP(C) No. 7683 of 2024] के वरिष्ठ अधिवक्ता ने अपने तर्क में रिक्रियों के आधार पर तथा दिनांक 15.01.2018 के कार्यालय ज्ञापन संख्या 36035/02/2017-Estt (Res) [बैंचमार्क विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण] के आलोक में अंकों में छूट देने की प्रार्थना की।

48. मुख्य तर्क यह है कि यद्यपि अपीलकर्ता द्वारा प्राप्त कुल अंक चयनित विकलांग उम्मीदवारों से अधिक हैं, फिर भी साक्षात्कार में न्यूनतम 20 अंक प्राप्त न करने के कारण वह विचार के क्षेत्र से बाहर हो गया। अपीलकर्ता का यह भी कहना है कि रिक्तियाँ उपलब्ध होने के बावजूद, प्राधिकरण द्वारा साक्षात्कार के न्यूनतम अंकों में छूट नहीं दी गई, जबकि पूर्वोक्त कार्यालय जापन के अनुसार ऐसा करने की सत्ता उनके पास थी। अपीलकर्ता का यह भी तर्क है कि सामान्यतः भी केवल साक्षात्कार के लिए न्यूनतम कट-ऑफ निर्धारित करना विधिक रूप से अनुचित है।

49. हम इस विषय में ऐसे निर्णय का उल्लेख करते हैं जो यह स्पष्ट करता है कि केवल रिक्तियों का अस्तित्व अंक छूट का स्वतंत्र आधार नहीं हो सकता। साथ ही, इस न्यायालय ने अनेक मामलों में यह स्वीकार किया है कि साक्षात्कार हेतु न्यूनतम कट-ऑफ निर्धारित करना विधिसम्मत है। अतः, अब जो एकमात्र शेष प्रश्न है, वह यह है कि जब उपयुक्त कार्यपालिका निर्देश/आदेश विद्यमान हों, जो प्राधिकरण को यह शक्ति प्रदान करते हों...प्रश्न यह उठता है कि जब प्राधिकरण के पास छूट प्रदान करने की शक्ति हो, तो क्या दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के पक्ष में चयन हेतु न्यूनतम आवश्यक अंकों में छूट दी जानी चाहिए?

49.1. *नीतू देवी सिंह बनाम इलाहाबाद उच्च न्यायालय* [AIR 2007 SC 1359] मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह निरूपित किया कि:

“इस परिप्रेक्ष्य में, चूंकि शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण प्रदान किया गया है, यद्यपि वह क्षैतिज स्वरूप में है, उन्हें वही न्यूनतम उत्तीर्णांक प्राप्त करने होंगे जो कि संबंधित प्राधिकरण द्वारा निर्धारित किए गए हैं। अपीलकर्ता-पिटीशनर जो कि निर्धारित न्यूनतम मानक को प्राप्त करने में विफल रही है (उसने केवल 36% अंक प्राप्त किए जबकि उत्तीर्णांक 55% निर्धारित था), अनुच्छेद 335 के प्रावधानों के अनुसार अग्रिम विचार से वंचित की जाएगी। यह अपीलकर्ता-पिटीशनर का मामला नहीं है कि कोई अन्य शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति, जिसने उससे कम अंक प्राप्त किए हों, को चयन प्रक्रिया में आगे बढ़ने की अनुमति दी गई हो।”

50. यह जांचने हेतु कि क्या अपीलकर्ता को कट-ऑफ अंकों में छूट प्रदान की जा सकती है, *तानिया मलिक बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय* मामले में यह कहा गया:

“केवल इस आधार पर कि कुछ और पद विज्ञापित किए गए हैं और रिक्त हैं, साक्षात्कार आयोजित हो जाने के बाद, न्यूनतम अंकों में छूट देना उचित नहीं कहा जा सकता। उत्तीर्णांक में छूट देना उचित नहीं होता, और उच्च न्यायालय ने अपने उत्तर में इस पर आपत्ति जताई है। चूंकि छूट देने की शक्ति उच्च न्यायालय के पास निहित है और उसने इस प्रार्थना का युक्तियुक्त आधार पर विरोध किया है, तथा संस्थान

के उद्देश्य के संदर्भ में भी न्यूनतम अंक निर्धारित करने का औचित्य है, अतः हम उच्च न्यायालय को न्यूनतम अंक में छूट देने का निर्देश देने के पक्ष में नहीं हैं।”

51. राजिंदर पाल सिंह बनाम पंजाब राज्य एवं अन्य के एक समान मामले में, याचिकाकर्ता (PwD) ने 48.8% अंक प्राप्त किए थे, जबकि मुख्य परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए न्यूनतम आवश्यक अंक 50% थे। उन्होंने PwD वर्ग के लिए 5% अंकों में छूट की प्रार्थना की थी, यह कहते हुए कि चार रिक्तियां उपलब्ध हैं। पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय ने याचिकाकर्ता की प्रार्थना को यह कहते हुए अस्वीकृत कर दिया:

“केवल इस कारण से कि श्रेणी 9 के अंतर्गत विज्ञापित पद रिक्त रह गए, यह अपने आप में विधान सेवा नियमों के विपरीत कोई निर्देश जारी करने का आधार नहीं हो सकता कि मानक में छूट देकर ऐसे पदों को भरा जाए। किन्तु यह ध्यान में रखते हुए कि विकलांग व्यक्तियों को सामान्य मानकों के अनुसार चयन में सफलता नहीं मिली है, पंजाब सरकार (उचित सरकार) को इस याचिका में उठाए गए विषय पर 1995 अधिनियम के आलोक में विचार करना चाहिए और न्यायिक पद हेतु आवश्यक दक्षता को बनाए रखते हुए सकारात्मक कार्यवाई तथा सशक्तिकरण के अपने दायित्व के अनुरूप निर्णय लेना चाहिए, और वह भी उचित समय के भीतर, अधिमानतः अगली पी.सी.एस. (न्यायिक शाखा) भर्ती से पूर्व।”

52. हालांकि अब यह विधिक रूप से स्थापित हो चुका है कि PwD को एक पृथक वर्ग के रूप में पहचाना जाना चाहिए और इसलिए उन्हें कुछ लाभ/रियायतें प्रदान की जानी चाहिए, जैसा कि अन्य ऊर्ध्वगामी आरक्षित वर्गों (SC/ST/OBC) को दिया जाता है। दिल्ली उच्च न्यायालय ने अनमोल भंडारी बनाम दिल्ली तकनीकी विश्वविद्यालय में PwD को SC/ST के समान अंकों में छूट देने का निर्देश दिया। प्रासंगिक अंश:

“21 उपर्युक्त निर्णय का संदर्भ हमने सरकार द्वारा लिए गए और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वीकार किए गए उस निर्णय को उजागर करने के लिए दिया है कि विकलांग व्यक्तियों के लिए आरक्षण क्षैतिज आरक्षण कहलाता है, जो अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) और सामान्य जैसी सभी ऊर्ध्वाधर श्रेणियों को काटता है। इसलिए, यह मान्यता दी गई कि चूंकि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति श्रेणियों से संबंधित विकलांग व्यक्ति, अर्थात् ऊर्ध्वाधर श्रेणियां, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति श्रेणियों को प्रदान की गई छूट का लाभ उठाते हैं, तो सामान्य श्रेणी या अन्य पिछड़ा वर्ग श्रेणी में आने वाले उन विकलांग व्यक्तियों को भी वही लाभ/रियायत न देने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि यह प्रक्रिया ही उनके ऊर्ध्वाधर श्रेणियों की परवाह किए बिना सभी व्यक्तियों की असमानता में समानता लाएगी। यह स्वयं विकलांग व्यक्तियों को भी सभी श्रेणियों में वही रियायत, अर्थात् 10% रियायत देने का औचित्य प्रदान करता है, जो अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति की श्रेणी में आने वाले विकलांग व्यक्तियों को प्रदान की जाती है।”

22. ... यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विकलांग व्यक्ति सामाजिक रूप से पिछड़े हुए होते हैं — यदि SC/ST जितने नहीं तो उससे अधिक। इसलिए संवैधानिक आदेशों के अनुसार, उन्हें कम से कम उतनी ही छूट मिलनी चाहिए, जितनी SC/ST को दी जाती है।"

52.1. आर्यन राज बनाम राज्य (यू.टी.) चंडीगढ़ [2021 (19) SCC 813] में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस सिद्धांत की पुष्टि की:

"3. हमारी राय है कि **द्विविभाजन (bifurcation)** के पहलू पर उच्च न्यायालय सही है। इसके अतिरिक्त, जहाँ तक योग्यता परीक्षा उत्तीर्ण करने का संबंध है, उच्च न्यायालय यह कहने में सही है कि कोई छूट नहीं दी जानी चाहिए, लेकिन हम दिल्ली उच्च न्यायालय के **अनामोल भंडारी बनाम दिल्ली प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय** [अनामोल भंडारी बनाम दिल्ली प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, 2012 एससीसी ऑनलाइन डेल्ही 4788 : (2012) 131 डीआरजे 583] के निर्णय में प्रतिपादित सिद्धांत का पालन करते हैं, जिसमें उच्च न्यायालय ने सही ढंग से माना है कि **विकलांगता से पीड़ित लोग भी सामाजिक रूप से पिछड़े हैं, और इसलिए, कम से कम, अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को दिए जाने वाले समान लाभों के हकदार हैं।**"

5. हमारी राय में, यह देखते हुए कि अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को योग्यता परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए 35% अंक आवश्यक हैं, भविष्य में विकलांग व्यक्तियों के संबंध में भी यही लागू होगा। इसलिए, श्री गोंसाल्वेस के मुवक्किल को चालू वर्ष के लिए नए सिरे से आवेदन करने की स्वतंत्रता है, जिसमें 31-05-2019 के विज्ञापन में उल्लिखित आवश्यक प्रमाण पत्र प्रस्तुत किया जाए, जिसमें यह कहा गया हो कि वह पेंटिंग या एप्लाइड आर्ट में पाठ्यक्रम करने के लिए फिट है। इसके अतिरिक्त, यह स्पष्ट है कि विकलांग व्यक्तियों के संबंध में **योग्यता परीक्षा में उत्तीर्ण अंक अब 35% हैं।**

53. स्वतः संज्ञान याचिका (नागरिक) संख्या 2/2024 में इस न्यायालय ने दिनांक 21.05.2024 को निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"1. हमारे दिनांक 21.03.2024 के आदेश के पश्चात्, हमें सूचित किया गया है कि मुख्य परीक्षा में इक्कीस विशेष रूप से सक्षम उम्मीदवार उपस्थित हुए। हमें यह भी सूचित किया गया है कि उन्हें या तो अपात्र होने के आधार पर या न्यूनतम अंक प्राप्त न करने के कारण साक्षात्कार के लिए नहीं बुलाया गया है।

2. हमारे दिनांक 21.03.2024 के आदेश के अनुसरण में, और इसे इसके तार्किक निष्कर्ष तक ले जाने के लिए, हम निर्देश देते हैं कि **यदि इन इक्कीस उम्मीदवारों में से किसी ने भी आरक्षित (SC/ST) उम्मीदवारों के लिए निर्धारित आवश्यक न्यूनतम अंक प्राप्त किए हैं, तो उन्हें साक्षात्कार के लिए बुलाया जाए।**"

53.1. इस प्रकार, इस न्यायालय ने अपने अधिकार का प्रयोग करते हुए, यह पाया कि PwD को एक पृथक वर्ग के रूप में उचित समता के साथ व्यवहार किया जाना चाहिए और अन्य आरक्षित वर्गों को दी गई रियायतें उन्हें भी मिलनी चाहिए थीं।

54. इस न्यायालय ने हरिदास परसेडिया बनाम उर्मिला शाक्य 44 के मामले में यह विचार किया था कि क्या जब उन्हीं परीक्षाओं में प्रतिस्पर्धा करने वाले अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति (SC/ST) उम्मीदवारों को अंकों में छूट की अनुमति नहीं दी जाती है, तो इन श्रेणियों के लिए आरक्षित पद रिक्त रह जाएंगे और ऐसे रिक्त कैरी फॉरवर्ड पद भर्ती की अनुमति अवधि तक रिक्त बने रहने के बाद, ये आरक्षित पद अनारक्षित हो जाएंगे और सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों के लिए उपलब्ध हो जाएंगे, तथा इससे राज्य द्वारा अनुच्छेद 16 (4) के तहत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को उनके लिए आरक्षित पदों पर नियुक्त करने में सक्षम बनाने के लिए ली गई नीतिगत निर्णय विफल हो जाएगा। इस न्यायालय ने माना कि अनुच्छेद 309 के तहत, नियमों में छूट देने की शक्ति सरकार के पास उपलब्ध है, उस शक्ति का प्रयोग या तो एक सामान्य प्रशासनिक आदेश द्वारा या विशेष प्रशासनिक आदेश द्वारा किया जा सकता है और इसलिए, अंकों में छूट/रियायत अनुमेय थी।

55. इस न्यायालय ने स्वतः संज्ञान याचिका (नागरिक) संख्या 2/2024 में दिनांक 07.11.2024 को उच्च न्यायालय को निर्देश जारी किए कि न्यायिक सेवा में नियुक्ति करते समय, प्रारंभिक तथा मुख्य परीक्षा में विकलांग व्यक्तियों (PwBD) के लिए अलग न्यूनतम उत्तीर्णांक निर्धारित किए जाएं। इस न्यायालय ने यह भी अवलोकित किया कि न्यूनतम उत्तीर्णांक सामान्यतः SC/ST अभ्यर्थियों के समान होने चाहिए, अथवा यदि प्रासंगिक नियमों में इसका प्रावधान हो तो और भी कम रखे जा सकते हैं। यदि नियम मौन हों, तो संबंधित प्राधिकृत प्राधिकारी ऐसे अंकों को निर्धारित कर सकता है।

56. इस चरण पर यह उल्लेख करना भी प्रासंगिक है कि 07.11.2024 के इस न्यायालय के आदेश के अनुपालन में, दिल्ली उच्च न्यायालय ने न्यायिक सेवा में बेंचमार्क विकलांगता (benchmark disabilities) से युक्त व्यक्तियों के लिए आरक्षित पदों पर आरक्षण प्रदान किया है। इसके अतिरिक्त, दिनांक 11.12.2024 को आयोजित परीक्षा समिति की बैठक की कार्यवाही में उल्लेख किया गया है कि इस न्यायालय द्वारा देशभर में जिला न्यायिक सेवा में चयन संबंधी निर्देशों को देखा गया तथा दिल्ली उच्च न्यायिक सेवा नियम, 1970 एवं दिल्ली न्यायिक सेवा नियम, 1970 के अंतर्गत बेंचमार्क विकलांगता से युक्त अभ्यर्थियों के लिए परीक्षा के विभिन्न चरणों पर पृथक न्यूनतम उत्तीर्णांक प्रदान किए गए हैं, साथ ही चयन प्रक्रिया के विभिन्न चरणों में पृथक कट-

ऑफ भी निर्धारित की गई है। यह भी उल्लेख किया गया है कि यह उच्च न्यायालय 04.01.2021 की राजपत्र अधिसूचना के अनुसार बेंचमार्क विकलांगता वाले व्यक्तियों को आरक्षण का लाभ प्रदान कर रहा है, जिसे सामाजिक न्याय एवं अधिकारिता मंत्रालय, विकलांगजन सशक्तिकरण विभाग द्वारा जारी किया गया था, और जिसके अंतर्गत नेत्रहीनता एवं अल्पदृष्टिता सहित विभिन्न विकलांगताओं को न्यायिक अधिकारी के पद हेतु उपयुक्त माना गया है।

57. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय ने यद्यपि SC/ST वर्ग के अभ्यर्थियों को प्रारंभिक एवं मुख्य परीक्षा में अंकों में छूट प्रदान की, परंतु अन्य वर्गों के अभ्यर्थियों को साक्षात्कार में छूट देने से स्पष्टतः इनकार कर दिया। इसके अतिरिक्त, इस न्यायालय द्वारा एक संबंधित वाद में पारित निर्देशों के अनुसार भी, किसी वर्ग के लिए साक्षात्कार में पृथक न्यूनतम उत्तीर्णांक निर्धारित नहीं किए गए।

58. इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ [(1992) Supp (3) SCC 217] के प्रकरण में, सात न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने PwD अभ्यर्थियों के लिए सार्वजनिक रोजगार में आरक्षण तथा कम उत्तीर्णांक की रियायत को सकारात्मक कार्रवाई (affirmative action) के रूप में प्रस्तावित किया। इस विषय पर निम्नलिखित अनुच्छेद प्रासंगिक हैं:

"293. आरक्षण के बिना वरीयता (Preference without reservation) को चयनित नागरिक वर्गों के पक्ष में लंबी अवधि देकर, अतिरिक्त अंक देकर, या आयु में छूट अथवा अन्य लाभ प्रदान करके अपनाया जा सकता है न्यूनतम आवश्यकताओं के सन्दर्भ में, राज्य बनाम एन.एम. थॉमस [(1976) 2 SCC 310, 380 : 1976 SCC (L&S) 227 : (1976) 1 SCR 906] में दिए गए प्राथमिकता के उपचारात्मक सिद्धांत को देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त, राज्य को विवेकाधिकार प्राप्त है कि वह ऐसे व्यक्तियों को अनुदान, छात्रवृत्ति, शुल्क में छूट आदि के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करे। ऐसी प्राथमिकताएँ या लाभ अस्थायी सहायक साधनों की भाँति होते हैं, जिनका उद्देश्य पिछड़े एवं अन्य वंचित वर्गों के सदस्यों को आगे बढ़ने एवं शेष समाज के साथ प्रतिस्पर्धा करने योग्य बनाना होता है। इन प्राथमिकताओं को इसलिए बढ़ाया जाता है क्योंकि ऐसे वर्ग अन्यथा योग्यता के आधार पर खुली प्रतिस्पर्धा में प्रभावी रूप से भाग लेने में अक्षम होते हैं, चाहे वह सार्वजनिक सेवाओं में नियुक्ति हो या शैक्षणिक पाठ्यक्रमों में चयन। ऐसी प्राथमिकताएँ सभी वंचित वर्गों को प्रदान की जा सकती हैं, चाहे वे पूर्ववर्ती भेदभाव का शिकार रहे हों या नहीं। पीड़ितता नहीं, बल्कि पिछड़ेपन या किसी भी प्रकार की असुविधा के कारण राज्य का यह उत्तरदायित्व बनता है कि वह उनके उत्थान के लिए कार्य करे। नेत्रहीन, बधिर, मूक, अपंग और अन्य विकलांग व्यक्ति प्राथमिकता के पात्र माने जाते हैं। ऐसे ही वे सभी नागरिक वर्ग जिनके पास किसी भी कारणवश तुलनात्मक असुविधा हो — भले ही वे पहले के भेदभाव का शिकारन रहे हों — उन्हें भी ऐसी प्राथमिकता दी जा सकती है। ऐसी कोई भी प्राथमिकता, यद्यपि सतही रूप से भेदभावपूर्ण प्रतीत हो, यदि सकारात्मक भेदभाव (benign classification) के रूप में राज्य के अत्यावश्यक हित के लिए हो, तो वह सांविधानिक रूप से उचित मानी जाएगी।

294. उपर्युक्त प्राथमिकताओं के अतिरिक्त, कोटा प्रणाली के अंतर्गत सार्वजनिक सेवाओं में पदों या शैक्षणिक संस्थानों में सीटों को पिछड़े वर्गों के लिए विशेष रूप से आरक्षित किया जा सकता है, जो इस प्रकार के संरक्षण के पात्र हैं। आरक्षण का उद्देश्य अधिक गंभीर स्तर के पिछड़ेपन को दूर करना होता है। आरक्षण, सतही तौर पर मुक्त एवं खुली प्रतिस्पर्धा की प्रक्रिया का प्रतिवाद है। यह योग्य एवं मेधावी अभ्यर्थियों के कुछ वर्गों को बाहर करने वाला भेदभावपूर्ण उपाय है: एम.आर. बालाजी बनाम राज्य [1963 Supp 1 SCR 439 : AIR 1963 SC 649]। यह केवल एक सुविधा, छूट या प्राथमिकता प्रदान करने की बात नहीं है। यह सक्षम वर्गों को निष्क्रिय करने की रणनीति भी नहीं है ताकि दोनों वर्गों के बीच सापेक्ष या गुणात्मक समानता स्थापित की जा सके। आरक्षण, जिसमें कुछ विशेष वर्गों को अनुकूल बनाया जाता है और अन्य सभी वर्गों को योग्यता एवं पात्रता होते हुए भी बाहर रखा जाता है, वह एक बहुत ही अधिक सकारात्मक एवं कठोर भेदभाव है — यद्यपि समान उद्देश्य अर्थात् गुणात्मक समानता की प्राप्ति हेतु। परंतु यदि यह उपाय संविधान के किसी अत्यावश्यक और विवक्षित उद्देश्य की पूर्ति के लिए कठोर रूप से सीमित एवं समर्पित न हो, तो इसे सकारात्मक भेदभाव के रूप में वैध ठहराना कठिन हो सकता है। अन्य सकारात्मक कार्यवाही (affirmative action) कार्यक्रमों के विपरीत, पिछड़ापन मात्र आरक्षण के लिए पर्याप्त नहीं है। आरक्षण का आधार वही पिछड़ापन हो सकता है, जो पहले से स्पष्ट रूप से पहचाने गए भेदभाव का प्रतिफल हो तथा जो अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के पिछड़ेपन के तुलनीय स्तर का हो। आरक्षण एक उपचारात्मक उपाय है जो ऐतिहासिक भेदभाव से उत्पन्न नकारात्मक प्रभावों के निवारण हेतु विशेष रूप से समर्पित होता है। इस प्रकार, सकारात्मक कार्यवाही और आरक्षण के बीच यह मूलभूत अंतर नकारा नहीं जा सकता।

पूर्व निर्धारित कोटा द्वारा आरक्षण को अतीत की विषमताओं के उपचार के रूप में प्रस्तुत करना, संविधान द्वारा विशेष रूप से मान्यता प्राप्त पिछड़ेपन को संबोधित संवैधानिक शक्ति के विशिष्ट स्वरूप की विशेषता की अनदेखी करना होगा।

कम अर्हता प्राप्तांक निर्धारित करना

831. हमें यह स्पष्ट करना होगा कि राज्य के लिए यह निषिद्ध नहीं है कि वह आरक्षित वर्गों के सदस्यों को प्रमोशन (पदोन्नति) के मामलों में रियायतें एवं छूट प्रदान करे, जब तक प्रशासनिक दक्षता से समझौता न हो। थॉमस [(1976) 2 SCC 310, 380 : 1976 SCC (L&S) 227 : (1976) 1 SCR 906] में वर्णित रियायत एवं करमचारी संघ [(1981) 1 SCC 246, 289 : 1981 SCC (L&S) 50 : (1981) 2 SCR 185, 234] में रक्तियों का अग्रोषण तथा सेवारत प्रशिक्षण/कोचिंग जैसे प्रावधान ऐसी ही रियायतों के उदाहरण हैं। हालांकि, आरक्षित वर्गों के लिए न्यूनतम योग्यता अंक कम करना या मूल्यांकन स्तर घटाना अनुचित होगा, क्योंकि इससे प्रशासन की दक्षता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। हम यह दोहराते हैं कि जबकि सीमित रूप से और प्रशासन की दक्षता एवं कार्यालय के कर्तव्यों की प्रकृति के अनुरूप OBC, SC एवं ST वर्गों के लिए न्यूनतम अर्हता अंक या मूल्यांकन मानक में कुछ छूट देना सीधी भर्ती के मामले में संभव है, पदोन्नति के मामलों में यह मार्ग स्वीकार्य नहीं होगा, जैसा कि ऊपर विस्तृत किया गया है।

832. बालाजी बनाम राज्य [1963 Supp 1 SCR 439 : AIR 1963 SC 649] एवं अन्य मामलों में यह अनुमानित किया गया कि आरक्षण स्वभावतः योग्यता के विरुद्ध होता है। उदाहरण स्वरूप, जंकी प्रसाद

परिम् [(1973) 1 SCC 420 : 1973 SCC (L&S) 217 : (1973) 3 SCR 236, 252] में यह टिप्पणी की गई — "आरक्षण की अवधारणा में यह अंतर्निहित है कि कम योग्य व्यक्ति को उस व्यक्ति पर वरीयता दी जाएगी जो अधिक योग्य है।" इसी आशय का मत न्यायमूर्ति खन्ना ने थॉमस [(1976) 2 SCC 310, 380 : 1976 SCC (L&S) 227 : (1976) 1 SCR 906] में अल्पमत में व्यक्त किया। यहाँ तक कि न्यायमूर्ति सुब्बा राव, जिन्होंने इस दृष्टिकोण से असहमति जताई, ने भी यह स्वीकार किया कि इस तर्क में कुछ बल है। देवदासन बनाम भारत संघ [(1964) 4 SCR 680 : AIR 1964 SC 179 : (1965) 2 LLJ 560] में अपने अल्पमत मत में, उन्होंने यह माना कि अनुच्छेद 16(4) और अनुच्छेद 335 के बीच कोई टकराव नहीं है, लेकिन साथ ही यह भी कहा — "आरक्षण की प्रकृति में यह अनिवार्य है कि कुछ हद तक मानकों में गिरावट होगी," फिर भी उन्होंने कहा कि इस आधार पर उसे असंवैधानिक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि उस स्थिति में राज्य ने न्यूनतम योग्यताएँ निर्धारित की थीं, और केवल वे अभ्यर्थी जो उन न्यूनतम योग्यताओं पर खरे उतरे, नियुक्त किए गए थे। यह दृष्टिकोण न्यायमूर्ति वी.आर. कृष्णा अय्यर ने थॉमस [(1976) 2 SCC 310, 380 : 1976 SCC (L&S) 227 : (1976) 1 SCR 906] में स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा : (SCC पृष्ठ 366, पैरा 132)

"एफिशिएंसी का अर्थ, सुशासन के संदर्भ में, केवल परीक्षा में प्राप्त अंकों से नहीं होता, बल्कि जनता के प्रति उत्तरदायी और जिम्मेदार सेवा से होता है। एक अराजक प्रतिभाशाली व्यक्ति सार्वजनिक प्रशासन के लिए एक गंभीर खतरा हो सकता है। दक्षता के घटकों में आत्मीयता की भावना तथा जवाबदेही की चेतना शामिल होती है, जो नौकरशाही (यह शब्द नकारात्मक अर्थ में प्रयुक्त नहीं है) के भीतर तभी विकसित होती है जब उसका गठन 'हम भारत के लोग' के कमजोर तबकों को भी सम्मिलित करता है। ऐसा कोई अन्य दृष्टिकोण नहीं हो सकता जो वर्तमान की क्रांतिकारी मांगों और अतीत की अन्यायपूर्ण विरासत के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके।"

833. वासंती कुमार बनाम राज्य [1985 Supp SCC 714 : 1985 Supp 1 SCR 352] में न्यायमूर्ति चिन्मय रेड्डी ने इसी आशय का विचार व्यक्त किया। उन्होंने कहा (SCC पृष्ठ 739, पैरा 36) :

"केवल परीक्षा में अधिक अंक प्राप्त करना ही किसी व्यक्ति को अच्छा प्रशासक नहीं बनाता। एक कुशल प्रशासक, अन्य गुणों के साथ-साथ, समाज के कमजोर वर्गों की समस्याओं को सहानुभूति से समझने और

उनका समाधान करने की क्षमता रखता है। और, इससे बेहतर कौन हो सकता है, जो स्वयं उन्हीं वर्गों से आता हो? यह सवाल क्यों न उठाया जाए कि स्वतंत्रता के 35 वर्षों बाद भी अनुसूचित जातियों की स्थिति में विशेष सुधार क्यों नहीं हुआ? क्या यह उचित प्रश्न नहीं है कि यदि जिला प्रशासक, राज्य और केंद्रीय नौकरशाही में इन वर्गों से अधिक प्रतिनिधित्व होता तो क्या स्थिति कुछ और होती? न्यायालय इन प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम नहीं है, लेकिन सरकार यदि ईमानदारी से इनका उत्तर खोजने का प्रयास करे, तो न्यायालय उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रशासनिक दक्षता आवश्यक नहीं है या यह एक मिथक है। हम केवल यह कह रहे हैं कि इसे एक कठोर सिद्धांत की तरह नहीं अपनाना चाहिए।"

834. याचिकाकर्ताओं के वरिष्ठ अधिवक्ता द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि आरक्षण का अर्थ कम योग्यता वाले व्यक्तियों की नियुक्ति होता है, जिससे प्रशासनिक दक्षता में गिरावट आती है। इसलिए आरक्षण को सीमित नियुक्तियों/पदों तक ही सीमित रखा जाना चाहिए — किसी भी स्थिति में 30% से

अधिक नहीं, जैसा कि डॉ. अंबेडकर द्वारा संविधान सभा में दिए गए भाषण में उल्लेख किया गया था। यह भी कहा गया कि अनुच्छेद 335 का निर्देश है कि आरक्षण इस प्रकार लागू किया जाए जिससे प्रशासन की दक्षता पर प्रभाव न पड़े। अतः अनुच्छेद 16 एवं अनुच्छेद 46 को भी इसी संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए।

835. दूसरी ओर, प्रतिवादी पक्ष ने तर्क दिया कि परीक्षा / परीक्षण / साक्षात्कार में प्राप्त अंक सेवा में प्रवेश के स्तर पर किसी उम्मीदवार की अंतर्निहित योग्यता का पूर्ण पैमाना नहीं होते। उन्होंने डीफूनीस [40 L Ed 2d 164 : 416 US 312 (1974)] में न्यायमूर्ति डगलस की राय पर भरोसा किया, जिसमें उदाहरण देकर यह बताया गया कि एक वंचित वर्ग से आने वाला अभ्यर्थी, यदि अच्छे अंक लाता है, तो वह उसके "संभावना और क्षमता" को दर्शाता है — जबकि उच्च वर्ग से आया अभ्यर्थी अधिक अंक ला सकता है। प्रतिवादियों का कहना है कि वंचित वर्गों के सदस्य प्रारंभिक स्तर पर समान प्रदर्शन नहीं कर सकते, परंतु समय के साथ वे उस स्तर तक पहुँच सकते हैं। यह मान लेना गलत होगा कि प्राकृतिक बुद्धिमत्ता केवल सामाजिक रूप से उन्नत वर्गों को ही प्राप्त होती है। यह तो हर जगह विद्यमान है — आवश्यकता है केवल एक अवसर की। अनुच्छेद 46 के निर्देश को इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखते हुए व्याख्यायित और कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

836. हम समझते हैं कि उपर्युक्त विपरीत दृष्टिकोणों की सत्यता या असत्यता पर विस्तार से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। (हालाँकि, यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अनुच्छेद 335 का "निर्देश"— यदि इसे निर्देश कहा जाए — यह है कि अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों के दावों पर विचार किया जाए, बशर्ते प्रशासन की दक्षता को बनाए रखा जाए। यह कहना कि यह अनुच्छेद केवल प्रशासन की दक्षता बनाए रखने का निर्देश देता है — एक त्रुटिपूर्ण व्याख्या होगी।) संभव है कि दक्षता (efficiency), प्रवीणता (competence) और योग्यता (merit) एक ही नहीं हैं; संभव है कि प्रशासनिक दक्षता को केवल योग्यता से जोड़ना गलत हो; और यह भी कि योग्यता केवल दक्षता का एक घटक है। फिर भी, प्रारंभिक नियुक्ति के स्तर पर योग्यता का महत्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह भी नकारा नहीं जा सकता कि आरक्षण का अर्थ होता है कम अंक पाने वाले व्यक्ति का चयन। इसके बावजूद, संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक न्याय के वादे को निभाने के लिए यह कीमत चुकानी पड़ेगी। हमें यह भी पूर्ण विश्वास है कि यदि अवसर दिया जाए, तो ये वर्ग अपने प्रारंभिक नुकसान को पार कर लेंगे और खुली प्रतिस्पर्धा में अन्य वर्गों के बराबर प्रदर्शन करेंगे — और कुछ मामलों में उन्हें पीछे छोड़ भी सकते हैं। यह अस्वीकार्य नहीं है कि प्राकृतिक योग्यता वंचित वर्गों में भी समान रूप से मौजूद है — और इसे सिद्ध करने के लिए केवल अवसर की आवश्यकता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि आरक्षण योग्यता के विरुद्ध है। आरक्षित उम्मीदवारों में भी योग्यता होती है और प्रारंभिक नियुक्ति के स्तर पर दी जाने वाली मामूली छूट समय के साथ नष्ट हो जाती है। ये उम्मीदवार भी अन्य लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा करेंगे और अपनी दक्षता में सुधार करेंगे।

837. यह कहते हुए हमें एक स्पष्ट स्पष्टीकरण देना आवश्यक है। कुछ मामलों में, जो अनुच्छेद 15 के अंतर्गत आते हैं, इस न्यायालय ने अनुसूचित जाति/जनजाति के अभ्यर्थियों के न्यूनतम योग्यता अंक हटाने को वैध ठहराया है, विशेष रूप से चिकित्सा पाठ्यक्रमों में प्रवेश के मामलों में। उदाहरणस्वरूप, मध्य प्रदेश राज्य बनाम निवेदिता जैन [(1981)... "4 एस सी सी 296 : (1982) 1 एस सी आर 759 के मामले में, चिकित्सा पाठ्यक्रम में प्रवेश को एक प्रवेश परीक्षा (जिसे प्री-मेडिकल टेस्ट कहा गया) के माध्यम से नियंत्रित किया गया था। सामान्य वर्ग के अभ्यर्थियों के लिए न्यूनतम उत्तीर्णांक कुल मिलाकर

50% और प्रत्येक विषय में 33% निर्धारित किया गया था। परंतु, अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए यह क्रमशः 40% और 30% निर्धारित था। जब यह पाया गया कि आरक्षित सीटों की संख्या के बराबर अनुसूचित जाति / जनजाति के अभ्यर्थी उपरोक्त मानक के अनुसार योग्य नहीं हो सके, तो सरकार ने न्यूनतम मानक को पूर्णतः समाप्त कर दिया। सरकार की इस कार्रवाई को इस न्यायालय में चुनौती दी गई, परंतु इसे वैध ठहराया गया। चूंकि यह मामला अनुच्छेद 15 के अंतर्गत आता था, इसलिए अनुच्छेद 335 का कोई प्रासंगिकता नहीं था और न ही उसे लागू किया गया। परंतु, अनुच्छेद 16 के मामले में, अनुच्छेद 335 प्रासंगिक होगा, और निवेदिता जैन [(1981) 4 एस सी सी 296 : (1982) 1 एस सी आर 759] के मामले में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा पारित आदेश की तर्ज पर कोई आदेश स्वीकार्य नहीं होगा, क्योंकि वह प्रशासनिक दक्षता के साथ असंगत होगा। उदाहरणस्वरूप, चिकित्सा अधिकारियों की नियुक्ति के संदर्भ में, सरकार या लोक सेवा आयोग यह नहीं कह सकते कि अनुसूचित जाति/जनजाति के अभ्यर्थियों के लिए कोई न्यूनतम उत्तीर्णांक निर्धारित नहीं किया जाएगा, जबकि अन्य अभ्यर्थियों के लिए ऐसा मानक निर्धारित किया गया हो। सरकार के लिए यह अनुमेय हो सकता है कि वह अनुसूचित जाति / जनजाति / पिछड़ा वर्ग के लिए एक उचित रूप से कमतर मानक निर्धारित करे — बशर्ते कि वह प्रशासन की दक्षता की आवश्यकताओं के अनुरूप हो — परंतु कोई न्यूनतम मानक बिल्कुल भी निर्धारित न करना अनुमेय नहीं होगा। आरक्षित वर्गों के लिए कम से कम मानक निर्धारित करते समय, पद से जुड़ी कार्यप्रकृति और सार्वजनिक हित का भी उचित रूप से ध्यान रखा जाना आवश्यक है।”

59. उपरोक्त निर्णय इस बात को स्पष्ट करता है कि PwD (विकलांग) अभ्यर्थियों को अंकों में छूट दी जा सकती है और यह न्यूनतम अंकों में छूट देना, जैसा कि प्रतिवादी की ओर से विद्वान अधिवक्ता द्वारा तर्क किया गया, प्रशासनिक दक्षता को कम नहीं करता। यह निष्कर्ष, मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 [जैसा कि F. No. 3106/XXI-B(One)/2023, दिनांक 22-6-2023 तक संशोधित किया गया है] के साथ समाहित किए जाने पर, जो उच्च न्यायालय को छूट देने की शक्ति प्रदान करता है, इस परिणाम पर पहुँचने में सहायक है कि PwD अभ्यर्थियों के लिए साक्षात्कार में अंकों की छूट संभव है। उक्त नियम निम्नानुसार उद्धृत है

19. छूट प्रदान करने की शक्ति – जब माननीय मुख्य न्यायाधीश यह संतुष्ट हों कि इन नियमों का कोई भी प्रवर्तन किसी विशेष मामले अथवा मामलों के वर्ग में अनावश्यक कठिनाई उत्पन्न कर रहा है, तो वे लिखित रूप में कारण अभिलिखित करते हुए किसी विशिष्ट नियम की अनुपालना से छूट दे सकते हैं या उसे शिथिल कर सकते हैं, जितना आवश्यक समझा जाए, और उन शर्तों एवं अपवादों के अधीन, जो आवश्यक माने जाएं: परन्तु यह कि जब भी माननीय मुख्य न्यायाधीश द्वारा ऐसी कोई छूट प्रदान की जाती है, तो राज्यपाल को इसकी सूचना दी जाएगी।

60. इसके अतिरिक्त, कार्मिक, लोक शिकायत एवं पेंशन मंत्रालय के कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग द्वारा जारी कार्यालय ज्ञापन संख्या 36035/02/2017-Estt (Res) [बैंचमार्क

दिव्यांगजनों के लिए आरक्षण] दिनांक 15.01.2018 भी उपयुक्तता के मानकों में छूट प्रदान करता है। संबंधित खंड इस प्रकार है:

"11. उपयुक्तता के मानकों में छूट:

11.1 यदि बेंचमार्क दिव्यांगजनों की श्रेणी के पर्याप्त संख्या में अभ्यर्थी सामान्य मानक के आधार पर आरक्षित पदों को भरने के लिए उपलब्ध नहीं हैं, तो इस श्रेणी के अभ्यर्थियों को शिथिल मानक पर चयनित किया जा सकता है, जब तक कि वे उस पद के लिए अयोग्य न हों।

हालाँकि, यह प्रावधान दिव्यांगता प्रमाणपत्र के निर्गमन के लिए निर्धारित पात्रता मानदंड में किसी भी प्रकार की छूट की अनुमति नहीं देगा।

यह शिथिल मानक बेंचमार्क दिव्यांगजनों के सभी अभ्यर्थियों पर समान रूप से लागू होगा, चाहे वे अनारक्षित/SC/ST/OBC वर्ग से संबंधित हों। किसी भी अन्य वर्ग के किसी भी अभ्यर्थी के पक्ष में आगे किसी भी प्रकार की छूट पर विचार नहीं किया जाएगा और वह स्वीकार्य नहीं होगी।"

61. इस संदर्भ में, इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा पारित निर्णय ओम राठोड़ बनाम निदेशक, स्वास्थ्य सेवाएं को उल्लेखनीय माना जा सकता है, जिसमें निम्नलिखित टिप्पणियाँ की गईं:

"57. यह सुनिश्चित करने के लिए कि दिव्यांग विद्यार्थियों को दी गई कोई विशेष सुविधा संस्था पर अनावश्यक बोझ न डाले, एक ऑडिट ट्रेल की व्यवस्था अत्यंत आवश्यक है। डॉ. सतेंद्र सिंह द्वारा प्रस्तुत दिनांक 20.10.2024 की रिपोर्ट में सुझाव दिए गए हैं:

(i) दिव्यांगता मूल्यांकन बोर्डों का नाम बदलकर सक्षमता मूल्यांकन बोर्ड रखा जाए;

(ii) ऐसे बोर्डों में दिव्यांग चिकित्सक या दिव्यांग अधिकारों के जानकार व्यक्ति को सम्मिलित किया जाए;

(iii) मूल्यांकन हेतु मानवाधिकार आधारित मॉडल का उपयोग किया जाए;

(iv) क्लिनिकल सुविधा हेतु मार्गदर्शन जारी किया जाए;

(v) बोर्डों को दिव्यांगता दक्षता मूल्यांकन हेतु प्रशिक्षित किया जाए;

(vi) एनेबलिंग यूनिट्स को संपर्क बिंदु के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम बनाया जाए।

इसमें से दिव्यांग चिकित्सकों को बोर्ड में सम्मिलित करने के संबंध में प्रथम प्रत्युत्तरकर्ता द्वारा दिनांक 24.03.2022 को परिपत्र जारी किया गया है, जिसकी पालना सभी बोर्डों द्वारा की जानी चाहिए।

58. द्वितीय प्रत्युत्तरकर्ता ने इस न्यायालय के ओमकार गौड निर्णय के आलोक में नए डोमेन विशेषज्ञ समिति के गठन का आश्वासन दिया है। हम उक्त आश्वासन को संज्ञान में लेते हुए निर्देश देते हैं कि इस समिति में दिव्यांग व्यक्ति या दिव्यांग अधिकारों के विशेषज्ञ शामिल किए जाएं। यह समिति नई दिशानिर्देशों की अनुशंसा करेगी जो वर्तमान दिशा-निर्देशों का स्थान लेंगे। उपर्युक्त सुझावों पर सरकार द्वारा उनके गुण-दोष के आधार पर विचार किया जाना चाहिए। निर्धारित अनुशंसाएं इस निर्णय के अनुरूप हों।”

ये टिप्पणियाँ नियुक्ति प्राधिकरणों द्वारा ध्यान में रखी जानी चाहिए, ताकि साक्षात्कार पैनल में दिव्यांग व्यक्तियों को शामिल किया जा सके, जिससे वे अभ्यर्थियों के स्थान पर स्वयं को रखकर उनकी वास्तविक क्षमताओं का मूल्यांकन कर सकें।

62. अतः, उपर्युक्त से यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि इंद्रा साहनी बनाम भारत संघ [1992 पूरक (3) एस सी सी 217] के निर्णय के आलोक में, न्यूनतम अंकों में छूट विधिक रूप से अनुमेय है। इसके अतिरिक्त, उपर्युक्त कार्यालय ज्ञापन स्पष्ट रूप से प्राधिकरण को न्यूनतम अंकों में छूट प्रदान करने की अनुमति देता है। इसलिए, हमारा मत है कि न्यूनतम कट-ऑफ अंकों में छूट विधिसम्मत है, विशेषतः तब जब नियुक्ति प्राधिकारी को छूट प्रदान करने की विशेष शक्ति प्राप्त हो। तदनुसार, इन मुद्दों का उत्तर इस प्रकार हमारे द्वारा प्रदान किया गया है।

सहवर्ती मुद्दे

63. डब्ल्यूपी संख्या 484 एवं 494 / 2024 में याचिकाकर्ताओं के अधिवक्ताओं द्वारा प्रस्तुत मुख्य तर्क, तथा स्वतः संज्ञान याचिका संख्या 6 / 2024 में उठाए गए विषय, राजस्थान न्यायिक सेवा परीक्षा में दिव्यांग अभ्यर्थियों हेतु पृथक न्यूनतम कट-ऑफ अंक प्रकाशित न किए जाने के संदर्भ में हैं, जबकि अन्य क्षैतिज आरक्षण वर्गों – जैसे महिला, तलाकशुदा महिला एवं विधवा – हेतु स्पष्ट रूप से कट-ऑफ अंक निर्धारित कर प्रकाशित किए गए हैं। इस विवाद की पृष्ठभूमि में, राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 के प्रासंगिक प्रावधानों की समीक्षा आवश्यक है, जो इस प्रकार हैं:

“10. अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग, अति पिछड़ा वर्ग, आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग, दिव्यांगजन तथा महिला अभ्यर्थियों हेतु रिक्रियों में आरक्षण —

(4) सेवा में भर्ती के लिए बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों हेतु रिक्रियों का आरक्षण, इस संबंध में समय-समय पर राज्य सरकार द्वारा जारी नियमों के अनुसार किया जाएगा।”

“20. परीक्षा योजना एवं पाठ्यक्रम —

(1) सिविल न्यायाधीश के पद पर भर्ती हेतु प्रतियोगी परीक्षा दो चरणों में भर्ती प्राधिकारी द्वारा आयोजित की जाएगी: प्रारंभिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा, जैसा कि अनुसूची-4 में निर्दिष्ट योजना के अनुसार होगा। प्रारंभिक परीक्षा में प्राप्त अंकों को अंतिम मेरिट निर्धारण में सम्मिलित नहीं किया जाएगा, यदि अभ्यर्थी मुख्य परीक्षा हेतु उत्तीर्ण घोषित हो जाता है।

(2) मुख्य परीक्षा में प्रवेश हेतु, वर्ष भर में भरे जाने वाले रिक्त पदों (वर्गवार) की संख्या से पंद्रह गुना अभ्यर्थियों को बुलाया जाएगा, परंतु इस सीमा में वे सभी अभ्यर्थी सम्मिलित किए जाएंगे जिन्होंने न्यूनतम प्रतिशत अंक प्राप्त किए हों जैसा कि भर्ती प्राधिकारी द्वारा निर्धारित किया गया हो।

(3) मुख्य परीक्षा में प्राप्त अंकों के आधार पर, रिक्त पदों की कुल संख्या (वर्गवार) से तीन गुना अभ्यर्थियों को साक्षात्कार हेतु योग्य घोषित किया जाएगा।

(3-क) मुख्य न्यायाधीश द्वारा नामित दो वर्तमान उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों तथा किसी विधि विषय के प्रोफेसर से नीचे नहीं स्तर के विशेषज्ञ की समिति अभ्यर्थियों का साक्षात्कार लेगी।

(4) कोई भी अभ्यर्थी, यदि वह लिखित परीक्षा के किसी प्रश्न पत्र में अथवा साक्षात्कार में अनुपस्थित रहता है, तो उसे अनुशंसा हेतु पात्र नहीं माना जाएगा।

(5) पाठ्यक्रम ऐसा होगा जैसा कि भर्ती प्राधिकारी द्वारा समय-समय पर निर्धारित किया जाएगा।”

“24. भर्ती प्राधिकारी द्वारा अनुशंसित अभ्यर्थियों की सूची —

भर्ती प्राधिकारी अभ्यर्थियों की सूची उनके समग्र प्रदर्शन के आधार पर तैयार करेगा। यदि दो या दो से अधिक अभ्यर्थियों को कुल अंकों में समान अंक प्राप्त होते हैं, तो भर्ती प्राधिकारी उन्हें सेवा के लिए उनकी सामान्य उपयुक्तता के आधार पर मेरिट में क्रमबद्ध करेगा, और सिविल न्यायाधीश संवर्ग में नियुक्ति के लिए उनके नामों की अनुशंसा नियुक्ति प्राधिकारी को करेगा:

परन्तु यह कि भर्ती प्राधिकारी अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजाति वर्ग के अभ्यर्थी की अनुशंसा नहीं करेगा, जब तक कि वह लिखित परीक्षा एवं साक्षात्कार के कुल योग में न्यूनतम 35% अंक प्राप्त न करे; तथा अन्य अभ्यर्थियों के लिए यह न्यूनतम 40% अंक होंगे।”

“41. चयनित अभ्यर्थियों की सूची —

न्यायालय अभ्यर्थियों की वर्गवार मेरिट सूची तैयार करेगा, जो मुख्य परीक्षा एवं साक्षात्कार में प्राप्त कुल अंकों के आधार पर होगी, जिसमें उनकी सामान्य उपयुक्तता को ध्यान में रखा जाएगा।

यद्यपि किसी नियम या अनुसूची में कुछ भी अंतर्निहित हो, तथापि सेवा में दक्षता की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ऐसी न्यूनतम अंक सीमा निर्धारित कर सकता है जो नियुक्ति हेतु अनुशंसा के लिए उपयुक्त मानी जाए।”

उपरोक्त प्रावधानों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि:नियम 10 के तहत, नियम निर्माताओं ने बेंचमार्क दिव्यांग व्यक्तियों (PwBD) को एक अलग श्रेणी के रूप में परिभाषित करते हुए उनके लिए पृथक् आरक्षण का प्रावधान किया है;और नियम 41 यह निर्देश देता है कि उच्च न्यायालय को श्रेणीवार मेरिट सूची तैयार करनी होगी तथा प्रत्येक श्रेणी के लिए उपयुक्त न्यूनतम कट-ऑफ अंक निर्धारित करने होंगे।

“63.1. राजस्थान उच्च न्यायालय के अनुसार, दिनांक 16.03.2024 की अधिसूचना द्वारा राजस्थान न्यायिक सेवा नियम, 2010 में संशोधन करते हुए दिव्यांगजन अभ्यर्थियों के पक्ष में आयु में छूट एवं अंकों में 5% की रियायत प्रदान की गई है; और वे इस न्यायालय द्वारा पारित किसी भी आदेश/निर्देश का पालन कर रहे हैं।

63.2. पूर्ववर्ती अनुच्छेदों में की गई चर्चा के आलोक में, हम यह घोषित करते हैं कि न्यायिक सेवा परीक्षाओं में सम्मिलित दिव्यांगजन अभ्यर्थियों के संदर्भ में कट-ऑफ अंकों में छूट प्रदान किया जाना विधिसम्मत है।

63.3. इन समस्त पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए, हम यह अभिमत व्यक्त करते हैं कि प्रत्येक श्रेणी के लिए पृथक् कट-ऑफ सूची बनाए रखना एवं उसका संचालन करना अनिवार्य है, और यह स्वाभाविक रूप से दिव्यांगजन श्रेणी को भी सम्मिलित करता है। कट-ऑफ अंकों की घोषणा न करना पारदर्शिता को प्रभावित करता है तथा स्पष्टता में बाधा उत्पन्न करता है, जिससे अभ्यर्थियों को उनके परिणाम का आधार ज्ञात नहीं हो पाता। इस स्थिति में दिव्यांग अभ्यर्थी अन्य श्रेणी के अभ्यर्थियों के साथ असमान शर्तों पर प्रतिस्पर्धा करने को बाध्य हो जाते हैं।अतः जब उपरोक्त नियमों ने PwD को पृथक् श्रेणी के रूप में मान्यता दी है एवं उनके लिए आरक्षण प्रदान किया गया है, तो यह संबंधित प्राधिकारियों का दायित्व बनता है कि प्रत्येक चरण पर PwD श्रेणी हेतु पृथक् कट-ऑफ अंक घोषित किए जाएं, ताकि समान स्थिति में स्थित अभ्यर्थियों का पर्याप्त प्रतिनिधित्व सेवा में सुनिश्चित किया जा सके, जो कि आरक्षण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक है।कट-ऑफ अंकों की घोषणा न किया जाना ऐसी स्थिति उत्पन्न करता है जहाँ इन श्रेणी के अभ्यर्थियों का न्यायिक सेवा में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं हो पाता, जो कि RPwD अधिनियम, 2016 के प्रावधानों के विरुद्ध है। अतः, हम संबंधित प्राधिकारियों को निर्देश देते हैं कि वे प्रत्येक परीक्षा चरण में PwD श्रेणी के लिए पृथक्

कट-ऑफ अंक घोषित करें तथा पृथक मेरिट सूची प्रकाशित करें और चयन प्रक्रिया को उसी अनुसार आगे बढ़ाएं।

64. इस चरण पर, यह न्यायालय पुनः यह स्पष्ट करता है कि दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों एवं हितों, विशेषकर रोजगार के क्षेत्र में एवं इस निर्णय के अधीन विषयों के संदर्भ में, पर्सन्स विथ डिसएबिलिटीज (PwD) और Persons पर्सन्स विथ बेंचमार्क डिसएबिलिटीज (PwBD) के बीच कोई भेद नहीं किया जा सकता। यह सुस्पष्ट रूप से घोषित किया जाता है कि प्राधिकारियों द्वारा ऐसा कोई तकनीकी अंतर स्थापित करने का प्रयास विधिसम्मत नहीं है। इस सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा पूर्व में भी मान्यता दी गई है, और यह विकास कुमार के निर्णय से भी स्पष्ट है:

“31. दिव्यांग व्यक्तियों में निहित अधिकारों एवं हितों को बेंचमार्क दिव्यांगता की अवधारणा से मिलाना, RPwD अधिनियम, 2016 के अंतर्निहित उद्देश्य को क्षति पहुँचाता है। और इससे भी अधिक, यदि किसी व्यक्ति को केवल इस आधार पर अधिकारों से वंचित किया जाए कि वह ‘बेंचमार्क दिव्यांगता’ की शर्त पूरी नहीं करता, तो यह स्पष्ट रूप से RPwD अधिनियम, 2016 के अल्ट्रा वायर्स (अधिनियम से परे) होगा।”

H. प्रेरक उदाहरण जो यह सिद्ध करते हैं — “यह संभव है”

65. इस न्यायालय द्वारा किए गए निष्कर्ष एवं निष्कर्षों को कानून व्यवसाय में विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त उन व्यक्तियों के प्रेरक उदाहरणों से बल प्राप्त होता है, जिन्होंने यह सिद्ध किया है कि दृष्टिहीनता, व्यावसायिक उत्कृष्टता प्राप्त करने, समान स्तर पर प्रतिस्पर्धा करने तथा न्याय व्यवस्था में महत्वपूर्ण योगदान देने में कोई बाधा नहीं है। इस संबंध में, हस्तक्षेपकर्ता के अधिवक्ता ने हमारा ध्यान ‘इट कैन बी डन’ नामक आई डी ए पी साक्षात्कार श्रृंखला की ओर आकर्षित किया, जिसका संचालन राहुल बजाज, अनुशा रेड्डी, और माधवी सिंह द्वारा किया गया है। इस श्रृंखला का उद्देश्य है: दिव्यांग अधिवक्ताओं एवं न्यायाधीशों द्वारा अपनाई गई रणनीतियों से प्रेरणा लेना, सचेतता को बढ़ावा देना तथा दिव्यांगजन हेतु युक्तिसंगत सहायताओं की आवश्यकता पर अर्थपूर्ण संवाद को बढ़ावा देना।

कुछ उदाहरण नीचे प्रस्तुत हैं:

- (i) न्यायमूर्ति जैक मोहम्मद याकूब, जिन्होंने 16 माह की आयु में मेनिन्जाइटिस के कारण अपनी दृष्टि खो दी थी, 1998 से 2013 तक दक्षिण

अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय में न्यायाधीश के रूप में कार्यरत रहे। उन्होंने एक विधिक रूप से प्रशिक्षित सहायक, एक बोलने वाला कंप्यूटर, ब्रेल प्रिंटर, तथा एक नोट-टेकर की सहायता से न्यायिक कर्तव्यों का कुशलतापूर्वक निर्वहन किया। हालाँकि वे मानते थे कि प्रकरण सामग्री पढ़ने में अधिक समय लगता है, उन्होंने इस विचार का कड़ा विरोध किया कि गवाह की विश्वसनीयता के आकलन हेतु उसे "देखना" आवश्यक है। उन्होंने न्याय प्रणाली में पहुँच और समानता की आवश्यकता पर बल देते हुए, दिव्यांग व्यक्तियों के अधिकारों की संवैधानिक सुरक्षा के पक्ष में निरंतर वकालत की।

(ii) न्यायमूर्ति डेविड एस. टेटल, जो संयुक्त राज्य अमेरिका की कोलंबिया सर्किट की अपील न्यायालय में न्यायाधीश हैं, उन्होंने अपनी दृष्टिहीनता के अनुकूलन हेतु कानूनी क्लर्क्स तथा रीडर की सहायता ली। यद्यपि वे आधुनिक तकनीक में उतने प्रवीण नहीं हैं, उन्होंने ब्रेल कीबोर्ड का प्रयोग किया। उन्होंने दृढ़तापूर्वक यह घोषणा की कि दृष्टिहीनता किसी अधिवक्ता की प्रभावी तर्क प्रस्तुत करने की क्षमता में बाधा नहीं बनती। उन्होंने दृष्टिहीन पेशेवरों पर कम अपेक्षाएँ थोपे जाने के विचार का खंडन करते हुए, स्वयं को "एक ऐसा न्यायाधीश जो दृष्टिहीन है" कहलाना पसंद किया न कि "दृष्टिहीन न्यायाधीश", और यह सिद्धांत पुष्ट किया कि विधिक पेशे में क्षमता, दिव्यांगता से कम नहीं होती।

(iii) डेविड लेपोफ़्स्की, एक विशिष्ट कनाडाई अधिवक्ता, ने कनाडा के सर्वोच्च न्यायालय में 30 से अधिक तथा ऑंटारियो अपीलिय न्यायालय में 200 से अधिक मामलों की सफलतापूर्वक पैरवी की है। उन्हें कनाडा के सबसे प्रभावशाली अधिवक्ताओं में एक माना जाता है। उन्होंने तकनीकी प्रगति का उपयोग अपने विधिक अभ्यास को सशक्त बनाने हेतु किया। जहाँ पहले वे मुकदमे की कार्यवाही पढ़वाने के लिए स्वयंसेवकों पर निर्भर थे, अब वे स्क्रीन रीडर्स और क्लाउड आधारित प्लेटफार्मों के माध्यम से डिजिटल रूप में दस्तावेजों तक पहुँच प्राप्त कर लेते हैं, जिससे वे कहीं से भी कार्य कर सकते हैं। यद्यपि उनके समक्ष अंतर्निहित चुनौतियाँ हैं, फिर भी वे न्यायार्थियों को उनका वैध अधिकार दिलाने के अपने संकल्प में अडिग हैं, और उन्होंने पेशागत बाधाओं को आत्मनिर्भरता व दृढ़ता से पार किया है।

- (iv) वरिष्ठ अधिवक्ता एस. के. रूंगटा, जिन्हें वर्ष 2011 में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा वरिष्ठ अधिवक्ता की उपाधि से विभूषित किया गया, ने अपने समस्त विधिक जीवन को विकलांगजनों के लिए बाधाओं को समाप्त करने हेतु समर्पित किया है। प्रारंभ में वे गतिशीलता और न्यायालयी कार्य के लिए क्लर्कों पर निर्भर रहते थे, किंतु सहायक तकनीक के आगमन के साथ उन्होंने इस निर्भरता को काफी हद तक कम किया। यद्यपि उन्हें कुछ न्यायाधीशों से उनकी क्षमता को लेकर संदेह का सामना करना पड़ा, वे यह स्पष्ट करते हैं कि न्यायपालिका ने समग्र रूप से उन्हें समर्थन दिया है। उन्होंने दृष्टिहीनों को सिविल सेवा में प्रवेश दिलाने से लेकर दिव्यांग आरक्षणों को लागू करने, गवाह के रूप में दृष्टिहीनों के अधिकारों को सुरक्षित करने, तथा भारत के दिव्यांग अधिनियम, 1995 के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- (v) टोमर रोसनर, जो इजराइली संसद में दृष्टिहीन विधिक सलाहकार हैं, विधायी मसौदा तैयार करने और कानूनों के विश्लेषण में विशेष रूप से दिव्यांग अधिकारों से संबंधित विषयों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। उन्हें प्रतिदिन बड़ी मात्रा में दस्तावेजों की समीक्षा करनी होती है, जिसके लिए वे स्क्रीन रीडर्स और ऑप्टिकल कैरेक्टर रिकग्निशन (OCR) तकनीक का उपयोग करते हैं। यद्यपि तकनीकी सहायता उपलब्ध है, फिर भी कुछ अवसरों पर उन्हें व्यक्तिगत रीडर्स की सहायता की आवश्यकता होती है। वे अपने पेशे की अंतर्निहित चुनौतियों को स्वीकार करते हैं, लेकिन यह भी मानते हैं कि प्रभावी तकनीक और अनुकूलन रणनीतियों के माध्यम से दिव्यांग विधिक पेशेवर अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन कुशलता से कर सकते हैं।
- (vi) श्री जैक चैन, जो गूगल में दृष्टिहीन पेटेंट अधिवक्ता हैं, यह बताते हैं कि दृष्टिहीन अधिवक्ताओं के लिए प्रमुख चुनौती केवल विधिक कार्यों को पूरा करना नहीं, बल्कि उन्हें कुशलतापूर्वक करना होता है। कानूनी मसौदा लेखन और फॉर्मेटिंग, विशेष रूप से Bluebook जैसे उद्धरण मानकों के पालन वाले कार्यों में अधिक समय लगता है। वे बताते हैं कि जहाँ एक ओर दृष्टिहीन पेशेवर कुछ कार्यों में अधिक समय लेते हैं, वहीं वे अन्य कार्यों में – जैसे स्क्रीन रीडर्स के माध्यम से पाठ पढ़ने की गति – में अपने सामान्य साथियों से अधिक दक्ष होते हैं। उनका सफल करियर यह सिद्ध करता है कि सहायक

तकनीक के रणनीतिक प्रयोग द्वारा दृष्टिहीन विधिक पेशेवर अत्यंत तकनीकी क्षेत्रों में भी सफल हो सकते हैं।

- (vii) यतनबर्श निगुसी, जो एक इथियोपियाई अधिवक्ता और दिव्यांग अधिकार कार्यकर्ता हैं, मानती हैं कि पाँच वर्ष की आयु में दृष्टि खोना ही उन्हें बाल विवाह से बचाने वाला प्रमुख कारण था, जिससे उन्हें कानूनी करियर अपनाने का अवसर मिला। उन्होंने अपना जीवन दिव्यांगजन, विशेषकर महिलाओं और बालिकाओं को सशक्त बनाने के लिए शिक्षा के माध्यम से समर्पित किया है, जो प्रायः दोहरे भेदभाव का सामना करती हैं। वे मानती हैं कि वास्तविक समावेशन के लिए सामाजिक मानसिकता में परिवर्तन और शैक्षणिक व स्वास्थ्य सुविधाओं की सुलभता अनिवार्य है। वे यह भी दृढ़ता से कहती हैं कि भेदभाव का कोई भी रूप स्वीकार्य नहीं है, और समग्र मानवाधिकारों को अपनाना आवश्यक है, जिससे यह सिद्ध हो कि लिंग अथवा दिव्यांगता की परवाह किए बिना प्रत्येक व्यक्ति समान अवसरों का अधिकारी है।
- (viii) न्यायमूर्ति रोनाल्ड एम. गोल्ड, जो यू.एस. कोर्ट ऑफ अपीलस (नाइंथ सर्किट) में न्यायाधीश हैं तथा प्रगतिशील मल्टीपल स्कलेरोसिस से पीड़ित हैं, यह रेखांकित करते हैं कि अमेरिकन्स विथ डिसेबिलिटीज एक्ट जैसे कानूनी संरक्षणों का विशेष महत्व है, क्योंकि ये यह सुनिश्चित करते हैं कि युक्तिसंगत सहायताएं किसी की कृपा नहीं, बल्कि कानूनी अधिकार हैं। वे ऐसे प्रणालीगत सुधारों के पक्षधर हैं जो सुलभता और पेशेवर उत्कृष्टता के बीच संतुलन बनाए रखें। उनका यह भी मत है कि दिव्यांग व्यक्तियों को करुणा या सहानुभूति के दृष्टिकोण से नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि समान रूप से सक्षम नागरिक समझा जाना चाहिए।
- (ix) निर्मिता नरसिंहन, एक दृष्टिबाधित अधिवक्ता और सेंटर फॉर इन्टरनेट एंड सोसाइटी की नीति निदेशक हैं, जिन्होंने डिजिटल सुलभता और नीतिगत सुधारों को आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। दिल्ली विश्वविद्यालय के कैम्पस लॉ सेंटर की स्नातक, तथा जर्मन और संगीत में अतिरिक्त डिग्रियों की धारक, उन्होंने भारत की राष्ट्रीय सार्वत्रिक इलेक्ट्रॉनिक सुलभता नीति के मसौदे को तैयार करने में प्रमुख भूमिका निभाई और सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर सार्वजनिक कार्यक्रमों में सुलभता को एकीकृत करने हेतु विस्तृत कार्य किया है। उन्हें राष्ट्रीय दिव्यांगजन सशक्तिकरण पुरस्कार, 2010 सहित

कई पुरस्कारों से सम्मानित किया गया है। वे इस बात को रेखांकित करती हैं कि सरकारी संस्थानों के साथ कार्य करते समय सुलभता की उपेक्षा और नौकरशाही बाधाओं के कारण प्रगति में बाधा आती है। उनका मत है कि इन प्रणालीगत अड़चनों को केवल दिव्यांगता के मुद्दे के रूप में नहीं बल्कि समग्र सुशासन के प्रश्न के रूप में संबोधित करना चाहिए, जिससे प्रभावी सुलभता सुधारों की राह अपने आप प्रशस्त हो सकती है।

- (x) हैबन गिर्मा, हार्वर्ड लॉ स्कूल से स्नातक करने वाली पहली मूक-बधिर दृष्टिबाधित अधिवक्ता हैं, जिन्होंने एक प्रभावशाली सुलभता सलाहकार के रूप में अपनी पहचान बनाई है। वे उन बाधाओं को दूर करने हेतु कार्यरत हैं जो दिव्यांग पेशेवरों के सामने आती हैं। वे विधिक सामग्री तक पहुँच हेतु स्क्रीन रीडर, ब्रेल डिस्प्ले और नोटटेकिंग सहायता का प्रयोग करती हैं। दृष्टिबाधित अधिवक्ताओं को दृश्य सूचनाओं तक पहुँच में होने वाली कठिनाइयों को उजागर करते हुए, वे संस्थाओं से वैकल्पिक प्रारूपों – जैसे पाठ विवरण या स्पर्शीय ग्राफिक्स – की उपलब्धता सुनिश्चित करने की मांग करती हैं। उनका स्पष्ट मत है कि कानूनी क्षेत्र में पहुँच केवल व्यक्तिगत प्रयास का विषय नहीं है, बल्कि यह प्रणालीगत उत्तरदायित्व का विषय है। वे विधिक संस्थाओं से आग्रह करती हैं कि वे समावेशी प्रथाओं को सक्रिय रूप से अपनाएं, जिससे दिव्यांग पेशेवरों की समान भागीदारी सुनिश्चित हो सके।

66. इसी प्रकार, उक्त साक्षात्कार शृंखला में सम्मिलित कई अन्य दृष्टिबाधित व्यक्तियों ने विधिक पेशे में ही नहीं, बल्कि अन्य क्षेत्रों में भी उत्कृष्टता प्राप्त की है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि दृष्टिबाधा किसी भी रूप में विधिक क्षेत्र में योगदान देने की क्षमता को सीमित नहीं करती। रिचर्ड चैन, जो अर्नोल्ड एंड पोर्टर एल एल पी में कॉर्पोरेट व सिविल रिटिज प्रैक्टिस ग्रुप के काउंसलर हैं; आइज़ैक लिड्सकी, जो यू.एस. सुप्रीम कोर्ट की न्यायमूर्ति सैंड्रा डे ओ'कोनर और रूथ बेडर गिन्सबर्ग के क्लर्क, हार्वर्ड स्नातक (क्यूम लॉडे), कई स्टार्टअप्स व गैर-लाभकारी संगठनों के संस्थापक, और आईज वाइड ओपन नामक न्यूयॉर्क टाइम्स बेस्टसेलर के लेखक हैं; मिलन मित्तल, जो इंडस लॉ में अधिवक्ता हैं; राजेश असुदानी, जिन्होंने अपने करियर की शुरुआत रेलवे उद्घोषक के रूप में की, फिर कानून की पढ़ाई की और भारतीय रिज़र्व बैंक में सहायक प्रबंधक बने; तथा शिरीष देशपांडे, जो महाराष्ट्र राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, नागपुर में प्राध्यापक हैं और जिन्होंने

ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय से अध्ययन किया है —ये सभी यह सिद्ध करते हैं कि दिव्यांगता किसी भी पेशेवर उत्कृष्टता की राह में बाधा नहीं है, विशेषकर विधिक पेशे में।

VI. निष्कर्ष

67. समग्र विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि एक अधिकार-आधारित दृष्टिकोण यह आवश्यक बनाता है कि दिव्यांग व्यक्तियों (PwDs) को न्यायिक सेवा के अवसरों की खोज में किसी प्रकार का भेदभाव न झेलना पड़े, बल्कि इसके विपरीत राज्य की ओर से समावेशी ढांचे को प्रदान करने हेतु सकारात्मक कार्रवाई की जानी चाहिए। अब समय आ गया है कि हम विकलांगता आधारित भेदभाव के विरुद्ध अधिकार को, जैसा कि RPwD अधिनियम, 2016 में मान्यता प्राप्त है, मूल अधिकार के समान दर्जा प्रदान करें, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि किसी भी अभ्यर्थी को केवल उसकी विकलांगता के कारण विचार से वंचित न किया जाए। आगे, जैसा कि विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है, न्यायिक दृष्टांत, अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशनों और RPwD अधिनियम, 2016 में निहित 'उचित सुविधा के सिद्धांत' के अनुसार PwDs को उनकी पात्रता के मूल्यांकन से पूर्व आवश्यक सहूलियतें प्रदान की जानी अनिवार्य हैं। उपरोक्त के आलोक में, कोई भी परोक्ष भेदभाव (indirect discrimination) जो PwDs को कठोर कट-ऑफ या प्रक्रिया संबंधी अवरोधों के माध्यम से बाहर करता है, उसे वास्तविक समानता सुनिश्चित करने हेतु न्यायालय द्वारा हटाया जाना चाहिए। समान अवसर सुनिश्चित करने की प्रतिबद्धता एक संरचित एवं समावेशी दृष्टिकोण की मांग करती है, जिसमें योग्यता का मूल्यांकन उन आवश्यक सुविधाओं की उपस्थिति में किया जाए जो अभ्यर्थी के अधिकारों के अनुरूप हों, जिससे न्यायिक नियुक्तियां वास्तव में निष्पक्षता और न्याय के सिद्धांतों को प्रतिबिंबित कर सकें।

67.1. इस प्रकार, सभी पक्षों की ओर से प्रस्तुत याचिकाओं, अधिवक्ताओं की दलीलों, कानूनी स्थिति एवं निर्णयों को ध्यान में रखते हुए, हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं:

(i) दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा में अनुपयुक्त नहीं ठहराया जा सकता है और वे न्यायिक सेवा के पदों हेतु चयन प्रक्रिया में भाग लेने के लिए पात्र हैं।

(ii) मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A में किया गया संशोधन संविधान के प्रतिकूल है और इस हद तक रद्द किया जाता है कि वह दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों को, जो शैक्षणिक रूप से योग्य हैं, आवेदन करने से वंचित करता है।

(iii) नियम 7 का वह प्रावधान जिसमें अतिरिक्त आवश्यकता के रूप में तीन वर्षों का अभ्यास अथवा पहले प्रयास में 70% अंक प्राप्त करना निर्धारित किया गया है, समानता के सिद्धांत तथा उचित सुविधा के सिद्धांत का उल्लंघन करता है और इस निर्णय के संदर्भ में विकलांग अभ्यर्थियों पर लागू होने की सीमा तक अमान्य घोषित किया जाता है।

(iv) यदि किसी वर्ग में पर्याप्त PwD चयन के उपरांत उपलब्ध नहीं हैं, तो ऐसे अभ्यर्थियों की उपयुक्तता के मूल्यांकन में छूट दी जा सकती है, जैसा कि उपयुक्त पैरा में विस्तृत किया गया है तथा प्रासंगिक नियमों, कार्यालय ज्ञापनों एवं कार्यपालक आदेशों के आलोक में।

(v) दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के लिए पृथक कट-ऑफ बनाए रखना तथा उसी के अनुसार चयन करना अनिवार्य है, जैसा कि उपयुक्त पैरा में तथा इंद्रा साहनी के निर्णय के अनुरूप निर्देशित किया गया है।

(vi) विकलांग व्यक्तियों के अधिकारों और पात्रताओं के संदर्भ में, विशेष रूप से रोजगार में, और विशेष रूप से इस निर्णय से संबंधित मुद्दों के संबंध में, विकलांग व्यक्ति (PwD) और बेंचमार्क विकलांगता वाले व्यक्ति (PwBD) के बीच कोई भेदभाव नहीं किया जा सकता है।

VII. परिणाम

68. उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर:

(i) दृष्टिबाधित अभ्यर्थी न्यायिक सेवा के पदों के लिए चयन प्रक्रिया में भाग लेने हेतु पात्र हैं, अतः मध्यप्रदेश न्यायिक सेवा (भर्ती एवं सेवा की शर्तें) नियम, 1994 के नियम 6A को इस सीमा तक रद्द किया जाता है कि वह दृष्टिबाधित एवं लो-विज़न श्रेणी के अभ्यर्थियों को न्यायिक सेवा में नियुक्ति से वंचित करता है।

(ii) नियम 7, जो PwD अभ्यर्थियों पर प्रथम प्रयास में 70% अंक प्राप्त करने या तीन वर्षों के अभ्यास की शर्त लगाता है, उसे इस सीमा तक रद्द किया जाता है। यह नियम PwD अभ्यर्थियों पर केवल उन्हीं शैक्षणिक व अन्य योग्यता शर्तों तक लागू रहेगा, जिसमें 70% न्यूनतम अंक प्राप्त करना शामिल है, परंतु उसमें यह आवश्यक नहीं होगा कि यह पहले प्रयास में हो या तीन वर्ष का अभ्यास किया गया हो। इसके परिणामस्वरूप, दिनांक 01.04.2024 को उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश तथा दिनांक 17.11.2023 को मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा जारी अधिसूचना PwD अभ्यर्थियों के संबंध में निरस्त की जाती है और अपीलकर्ता अयुष यादवी तथा इसी स्थिति के अन्य अभ्यर्थी इस निर्णय के आलोक में चयन प्रक्रिया में भाग लेने के पात्र होंगे।

(iii) उच्च न्यायालय द्वारा दिनांक 11.01.2024 को पारित आदेश एवं अधिसूचना दिनांक 18.02.2023 अपीलकर्ता आलोक सिंह तथा उसी स्थिति के अन्य अभ्यर्थियों के संबंध में निरस्त की जाती है। उक्त अपीलकर्ता एवं समान स्थिति के अभ्यर्थियों को, यदि वे अन्यथा पात्र हैं, तो कार्यपालक आदेशों के अनुसार लागू छूट प्रदान करके रिक्त पदों पर नियुक्ति हेतु विचार किया जाएगा।

(iv) WP (C) Nos. 484 एवं 494 of 2024 में याचिकाकर्ताओं का कथन है कि राजस्थान न्यायिक सेवा प्रारंभिक परीक्षा में PwD के लिए पृथक कट-ऑफ लागू नहीं किया गया और परिणामतः वे मुख्य परीक्षा हेतु चयनित नहीं हो सके; अतः वे इस निर्णय के आलोक में अगली भर्ती प्रक्रिया में, यदि वे आवेदन करें, तो वर्तमान रिक्त पदों के साथ, PwD वर्ग हेतु पृथक कट-ऑफ एवं मेरिट सूची बनाए जाने के आधार पर, चयन के लिए पात्र होंगे।

(v) संबंधित प्राधिकारी इस निर्णय के आलोक में न्यायिक अधिकारियों की नियुक्ति हेतु चयन प्रक्रिया को यथाशीघ्र पूर्ण करें, वांछनीय है कि यह प्रक्रिया आज से तीन माह की अवधि में पूर्ण की जाए।

69. उपरोक्त शर्तों पर सभी याचिकाएं समाप्त की जाती हैं। कोई लागत नहीं। यदि कोई संबंधित अंतरिम आवेदन लंबित हैं तो वे भी समाप्त माने जाएं।

मामले को तीन माह बाद "अनुपालन की रिपोर्टिंग हेतु" सूचीबद्ध किया जाए।

..... न्यायाधीश

[जे.बी. पारदीवाला]

..... न्यायाधीश

[आर. महादेवन]

नई दिल्ली

03 मार्च, 2025

अतः टिप्पणियाँ

1. Plessy बनाम फर्ग्यूसन, (1896) – न्यायमूर्ति जॉन मार्शल हार्लन द्वारा समानता के संवैधानिक सिद्धांत की स्थापना।
2. Rashmi Thakur बनाम मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय, AIR Online 2018 MP 551 – मध्यप्रदेश में दृष्टिबाधित अभ्यर्थियों के लिए आरक्षण की पुष्टि।
3. Anuj Garg बनाम होटल एसोसिएशन ऑफ इंडिया, (2008) 3 SCC 1 – रुढ़िगत वर्गीकरण को असंवैधानिक घोषित किया गया।
4. V. सुरेंद्र मोहन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2015) 4 MLJ 513 व (2019) 4 SCC 237 – दृष्टिबाधितों को न्यायिक सेवा में अनुपयुक्त ठहराने वाले निर्णय।
5. विकास कुमार बनाम UPSC, (2021) 5 SCC 370 – “उचित समायोजन” के सिद्धांत को विधिक मान्यता, सुरेंद्र मोहन का खंडन।
6. Union of India बनाम National Federation of the Blind, (2013) 10 SCC 772 – दृष्टिबाधितों के लिए आरक्षण लागू करने का संवैधानिक निर्देश।

7. Jeeja Ghosh बनाम भारत संघ, (2016) 7 SCC 761 – वास्तविक समानता और PwD की अलग आवश्यकताओं के अनुसार नीति निर्माण की आवश्यकता।
8. Justice Sunanda Bhandare Foundation बनाम भारत संघ, W.P. No.110/1998 – RPwD अधिनियम को अनुच्छेद 21 के तहत गरिमापूर्ण जीवन के अधिकार से जोड़ा गया।
9. Nishant S. Diwan बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय, W.P. No.983/2014 – दिल्ली उच्च न्यायिक सेवा में दृष्टिबाधितों को समावेशी नीति देने का निर्देश।
10. डॉ. कविता खंबोज बनाम पंजाब एवं हरियाणा उच्च न्यायालय, (2024) 7 SCC 103 – न्यायिक सेवा भर्ती में साक्षात्कार के न्यूनतम अंकों की वैधता।
11. अभिमीत सिन्हा बनाम पटना उच्च न्यायालय, (2024) 7 SCC 262 – न्यायिक अभ्यर्थियों की उपयुक्तता में साक्षात्कार के महत्व की पुष्टि।
12. सिद्धार्थ शर्मा बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, W.P. (C) No.710/2024 – सुप्रीम कोर्ट द्वारा दृष्टिबाधित अभ्यर्थी को साक्षात्कार में भाग लेने की अनुमति।
13. तिशान जांगिड़ बनाम राजस्थान उच्च न्यायालय, W.P. Diary No.49998/2024 – चयन प्रक्रिया में भेदभाव के विरुद्ध अंतरिम राहत।
14. कार्यालय ज्ञापन दिनांक 15.01.2018, भारत सरकार, कार्मिक एवं प्रशिक्षण विभाग – PwBD उम्मीदवारों हेतु उपयुक्तता मानकों में शिथिलता हेतु दिशा-निर्देश।

Priyanka Borana (Adv)